ॐ नमो ब्रह्मणे

वेदमन्दिर – प्रवेशिका

अर्थात्

[वेदोंका स्वल्प परिचय]



वेदश्चक्षुः सनातनम्



लेखक—
उदासीन-प्रवर श्रीमद् ऋषिराम-शिष्य
योगीन्द्रानन्द न्यायाचार्य, मीमांसा-तीर्थ

———

प्रकाशक—
परमहंसपरिव्राजकाचार्योदासीनवर्य,
दर्शन-रत्न, वेदालङ्कार, श्री स्वामी सर्वानन्दजी
महामण्डलेश्वर
अहमदाबाद

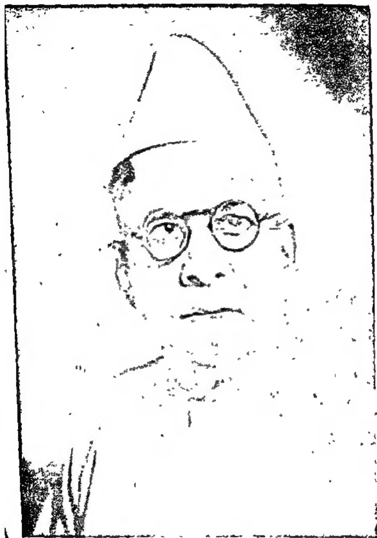
१९५० ई०

श्रीयुत भाई फूलशङ्कर सुन्दरलाल देसाई ऐडवोकेट (अहमदाबाद) की पुण्य स्मृतिमें, उनके द्वारा स्थापित एक ट्रस्ट-कमेटीकी ओरसे प्रकाशित।

मिलनेका पता —
वेदमन्दिर, कांकरिया रोड
अहमदाबाद

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य १॥

मुद्रक :
जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद ९



स्वर्गीय भाई फूलचन्द्र सुन्दरलाल देसाई
एडवोकेट 'अहमदाबाद'

भूमिका

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

जिस हिन्दू-जातिने अपने लोकोत्तर संस्कृति मन्दिरकी आधार शिला भगवान् वेदकी रक्षामें अनन्त बलिदान किए। वही जाति आज यदि स्वातन्त्र्य-मदमें चकनाचूर होकर अपनी वैदिक सम्पत्तिसे हाथ धो बैठे, तो इससे बढ़कर और लज्जाकी बात क्या होगी? हाँ! यही सम्पत्ति किसी जीती-जागती जातिके अधिकारमें होती, फिर वह फूली न समाती और अवसर पाकर इसकी एक ही झनकारसे विश्वका कोना-कोना भर डालती। परन्तु आर्य हृदयकी भावुकता और मूढ़ता पर संसार हँसता है। हमें उस हँसीका मुँह तोड़ उत्तर अवश्य देना होगा और बता देना होगा कि "पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः" (ऋ० ६।७५।१४) जैसे हमारे विश्व धर्म शिक्षणके ,बिना अपनाये मानवताभिरक्षण असम्भव है। वैदिक शीतल शिक्षाकी रक्षा प्रत्येक सहृदय मानवका मुख्य कर्तव्य है।

हमारे प्रातः स्मरणीय श्रौत मुनियोंने अपने अनुकरणीय अनुपम आत्म-त्याग-पूर्वक आदर्श आचरणसे सुझा दिया है कि वेद-रक्षाके प्रधान साधन हैं— वेद-मन्दिरों, वैदिक विद्यालयों और पुस्तकालयोंकी स्थापना, वैदिक अनुसन्धान एवं वैदिक ग्रन्थ-निर्माणादि। युधिष्ठिरकी बारहवीं शताब्दीमें वेद विद्या विशारद उद्दामान-प्रवर श्रुतिसिद्ध मुनिने अपने दुर्धर्ष परिश्रमसे बहुतसे वेद मन्दिर स्थापित किए थे *। इतना ही नहीं निघण्टु जैसे

* वेदमन्दिर-स्थापनाका प्रामाणिक इतिहास देखो "श्रौतमुनि-चरितामृत प्रवाह ५, तरङ्ग ७, पृ० ३०।

गम्भीर वैदिक ग्रन्थोंका निर्माण भी किया था ×। दुर्भाग्यसे भारतमें एक भी वेद-मन्दिर न-बचा। यह अभाव हमारे श्रद्धेयचरण गुरुवर वेद दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी महाराजको बहुत अखर रहा था। अवसर हाथ आते ही, इन्होंने अहमदाबादमें एक विशाल वेद-मन्दिर स्थापित कर दिया। वैदिक विद्वानोंको इससे महती प्रसन्नता हुई। पण्डित 'श्रीपाद दामोदर सातवलेकर' ने तो यहाँ तक कहा कि 'श्री स्वामीजीने भारतकी एक बड़ी कमी ही दूर नहीं की, बल्कि विश्वमें भारतीयोंका सिर उन्नत कर दिखाया।

महाराजश्रीने वैदिक प्रचारमें अपना तो पूर्ण जीवन अर्पित किया ही है; हम लोगों पर भी यही अनिवार्य व्रत-पालन रक्खा है।

आपके सदुपदेशका ही फल है कि आज अहमदाबादके सत्संगियोंमें वैदिक साहित्यका चिर सुप्त प्रेम जाग उठा है। विशेषत प्रवर प्रतिभाशाली वकील भाई फूलशङ्कर सुन्दरलाल देसाई (अहमदाबाद) महाराजश्रीके चरणोंमें अटूट भक्ति तथा श्रौत साहित्यमें अगाध श्रद्धा रखते थे। प्राय नित्य ही वैदिक प्रकाशनका सङ्कल्प प्रकट किया करते थे। अपने सङ्कल्प कल्प-पादपकी अचिरेण सफलताके लिए भाईने ता० ३-४-१९४५ ० में अपने एक मकान [म्यु० से० न० १९७७, १९७७/१, १९७७/१/१, १९७७/२, १९७७/३ मारगपुर अहमदाबाद] पर ट्रस्ट-कमेटी बनाते हुए लिखा कि—'वेद और दर्शन

× निघण्टु निर्माण देखो इसी पुस्तकका पृ० १२।

सम्बन्धी पुस्तकोंके लिखाने तथा छपानेके कार्यमें कथित मकानका पूरा भाड़ा व्यय किया जाय'। तदनन्तर लिखा है कि— 'पुस्तक-लेखनादिका कार्य वही व्यक्ति करेगा, जिसे परम-पूज्य ब्रह्मनिष्ठ वेददर्शनाचार्य सद्गुरु श्री १०८ महामण्डलेश्वर श्री गंगेश्वरानन्दजी उस कार्यके लिए नियुक्त करेंगे। ट्रस्ट-कमेटिके मेम्बर ये हैं—(१) ठाकोरलाल चन्दुलाल ठाकोर (मुम्बई), (२) देसाई कृष्णलाल फूलशङ्कर (अहमदाबाद), (३) देसाई रामप्रसाद नन्दराम (अहमदाबाद) और चौथा मैं।

बहुत खेदसे कहना पड़ता है कि मई १९४९ ई० में भाईका देहावसान हो गया। थोड़े दिनोंके बाद महाराजश्रीने भाईके सङ्कल्पको पूरा करनेके लिए न्यायाचार्य, मीमांसातीर्थ, शास्त्री योगीन्द्रानन्दको लिखा कि वैदिक शिक्षाकी एक पुस्तक शीघ्र लिखकर तैयार कर लें। उन्होंने पत्र पाते ही कार्य आरम्भ कर दिया और हमारे साहित्यमर्मज्ञ, वेद-विद्या-पारंगत पं० रामस्वरूपजी (सम्पादक सन्तसमाचार) की "अमुदित मात्रा-शास्त्रीय" श्लोकबद्ध टीका पर "श्रुतिप्रियावादिनी" लिखकर तैयार कर ली। हरद्वार-कुम्भमें उक्त टीका-द्वय-सहित "मात्राशास्त्र" को महाराजश्री तथा और कई विद्वानोंने सुना। सभीने मुक्त कंठसे प्रशंसा की। महाराजश्रीकी आज्ञासे शास्त्री योगीन्द्रानन्द कुम्भका और आवश्यक सब काम छोड़कर उसे छपानेमें लग गये। भाई फूलशङ्करने महाराजश्रीसे कहा था कि मेरे धनसे प्रथम पुस्तक आप अपने गुरु महाराज (योगिराज श्री १०८ रामानन्दजी) के स्मरणमें प्रकाशित कराएँ। अतः उनके स्मरणमें "मात्रा शास्त्र" का प्रकाशन हुआ।

महाराजश्रीने शास्त्री योगीन्द्रानन्दको वैदिक एवं दार्शनिक अनुसन्धानके लिए नियुक्त कर रक्खा है। उनका अनुसन्धान बराबर चालू है। सामयिक आवश्यकतानुसार "वेदमन्दिर-प्रवेशिका" नामकी पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। "मात्रा शास्त्र" के साथ-ही-साथ इसका भी सङ्कलन होता रहा है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष हिन्दी एवं गुजरातीमें महत्त्वकी पुस्तकें प्रकाशित की जायँगी।

पुस्तक-परिचय—प्रस्तुत पुस्तकके नामसे ही सुव्यक्त है कि वेदरूपी मन्दिरमें प्रवेश करानेका यह एक सरल पथ है। आकार छोटा होने पर भी यह अपने ध्येय साधनमें नितान्त सफल है। इसमें चार (सोपान) प्रकरण हैं। "वेद गौरव" नामक प्रथम सोपानमें वेद-विद्याकी गरिमा और सर्वांगीणताका सुन्दर निरूपण है। "वैदिक रूप रेख" नामक द्वितीय सोपानमें उपलब्ध वैदिक साहित्यके समग्र कलेवर पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। तृतीय "मन्त्र शिक्षा" सोपानमें संहिताओंके मार्मिक शिक्षाप्रद मन्त्रोंका, प्रामाणिक अर्थोंके साथ स्वल्प-संग्रह है। चतुर्थ "ब्राह्मण शिक्षा" सोपानमें ब्राह्मण वाक्योंका पूर्व-सोपान—जैसा सुन्दर संग्रह है। एक महान् कार्यमें व्यापृत शास्त्री योगीन्द्रानन्दका आनुषंगिक भी यह कार्य हिन्दी जगत्की एक अच्छी सेवा है। पूर्ण आशा है कि स्वर्गीय आत्माको अपने इस स्थायी स्मारकसे सच्ची शान्ति मिलेगी।

वेदमन्दिर, अहमदाबाद	म० म० स्वामी सर्वानन्दजी
आश्विन शु० १	दर्शनरत्न, वेदालङ्कार,
सम्वत् २००७	व्याख्यान-वाचस्पति

आभार-प्रदर्शन

कुछ लिखना सरल-से-सरल कार्य है और कठिन-से-कठिन। उच्च कक्षाके चिन्ताशील विद्वानोंके लिए सरल-से-सरल होगा। मुझे तो काफ़ी सोचना पड़ता है; कहीं-कहीं काफ़ीसे भी अधिक। क्या अच्छा होता!!! कि लेखनीसे जो एकबार निकल जाता; किसीके बापसे भी काटे न कटता। किन्तु मेरा लेख मुझे ही कई बार बुरी तरह काटना पड़ता है। कहाँ! कित्र साहित्यात्मा भगवान् वेद और कहाँ? मैं। सत्य तो यह है कि परमहंस-परिव्राजकाचार्य, उदासीन-प्रवर, वेददर्शनाचार्य, महामण्डलेश्वर स्वा० गंगेश्वरानन्दजी महाराजके सत्परामर्शसे ही 'वेदमन्दिर-प्रवेशिका' बन सकी है। अतः आपका हृदयसे ऋणी हूँ। दर्शन-रत्न, वेदालङ्कार, व्याख्यान-वाचस्पति म० म० स्वामी सर्वानन्दजीका मैं कृतज्ञ हूँ; कि आपने भूमिका लिखनेमें अमूल्य समय दिया है। सबसे अधिक इस स्थानके अपने सुहृद्-वर महृदय प्रबन्धकोंका आभारी हूँ; इन्होंने पूर्ण सुविधाएं मुझे दे रक्खी हैं। भाई 'पुरुषोत्तम, दलसुखराम' जीने मुद्रण-व्यवस्था एवं प्रूफ-करेक्शनमें तथा भाई 'अम्बालाल, निर्भयराम' मशरूवालेने प्रूफके लाने-लेजानेमें बड़ी सहायता की है; इसलिए दोनों भाइयोंको साशीर्वाद धन्यवाद है। मैं उन वैदिक महारथियोंको अवश्य धन्यवाद दूँगा; जिनके लेखोंसे मैंने लाभ उठाया है।

वेदमन्दिर, अहमदाबाद
आश्विन शु० ३
सम्वत् २००७

श्रौतमुनि-चरण-रेणु
योगीन्द्र



विषय-सूची

प्रथम सोपान (वेद-गौरव) पृ० १–३२

द्वितीय सोपान (वैदिक रूप-रेखा) पृ० ३३–१०५

प्रेस-प्रमाद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	११	श्रति	श्रुति
३	१३	त्रिधव	त्रिधैव
,,	२२	नोद्धत	नोद्धृत
५	७	जगत	जगत्
६	१५	उन्हों	उन्होंने
१६	७	इयादि	इयादि*
३९	७	वेदाँध	वेदाँथ
४३	२	अनूवाक	अनुवाक
,,	४	सहिताका	संहिताका
४५	७	प्रसिद्ध	प्रसिद्धि
४९	२	उपनिषदों	उपनिषदोंको
५४	१२	ऋ	ऋग्
५५	१४	नहीं, अपितु अधिक ही है	×
६०	१०	श्रौत्र	श्रौत
६१	१७	सौत्रायणी	सौत्रामणी
,,	,,	पदक्रन्द	यदक्रन्द
६२	३	रोहितानुवन	रोहितानुवचन
७२	१७	सू—	सत्र—
९७	२०	निमिमे	निमित्तमें
१००	१४	गन्धव	गन्धर्व
१०३	१	शो	शत्रु
,,	२	आत्स	आत्म
१०४	३	शाल्क	शाकल
१०६	१५	अघमषण	अघमर्षण
१०७	शीर्षक	द्वितीय	तृतीय
१०८	१०	साय	सायं
११२	२२	परस्मै॰	परस्मै॰
११६	५	साय	सायं
११७	९	श्वश्र	श्वश्रू
११७	१८	भोग	भोगं
१२०	५	ब	म
१२४	१९	आ	जो
१२५	१६	है	हैं
१२९	११	शाल	शील
१२९	१८	ठाक	ठीक
१२९	२२	प्रादुभूत	प्रादुर्भूत
१३१	९	ब्रह्मचय	ब्रह्मचर्य
१३०	९	निमित्तापा	निमित्तोपा
१३०	९	ह	है
१३०	१३	आ.श	आकाश
१३१	१५	विश्वम	विश्वमें
१३१	११	सुशाभित	सुशोभित
१३२	१८	वाणाका	वाणीका
१३३	२१	ऋपि	ऋषि
१३४	११	ब्रचर्यादि	ब्रह्मचर्यादि
१३४	११	कने	करने
१३९	५	अग्निष्टोमो	अग्निष्टोमो
१३९	२४	स्यादौसं	स्यादौवं
१४०	२	तयतं	तथैवं
१४१	१३	धाके	श्रीके



श्रौतवंशसमुद्भूतः, श्रौतमार्गस्य रक्षकः ।
भक्तिविरक्तिसमुच्चेता, श्रीचन्द्रः पातु नः सदा ॥



वेदमन्दिर–प्रवेशिका

प्रथम सोपान

वेद गौरव

उदासीनं सुखासीन, मुपासीनं रमारमम् ।
औदास्यप्रथमाचार्य, कुमार वैधसं भजे ॥१॥
श्रौतवंशसमुद्भूत, श्रौतमार्गस्य रक्षकः ।
भक्तिविक्तिसमुच्चेता, श्रीचन्द्रः पातु नः सदा ॥२॥

वैदिक ज्ञान-गरिमा पर हिन्दू जातिका तो अविचल श्रद्धा है ही, आजका कल्पना-कुशल प्रगतिशील मानव भी मुग्ध हो चला है । इस दिव्य सन्देश और मौलिक विचार प्रवर्तक वेदके संरक्षणमें हिन्दुओंके बलिदान ऐतिहासिकोंसे छिपे नहीं। वेदों पर आँच आते देख राजकुमारियोंके कोमल हृदय काँप उठे । 'को वेदानुद्धरिष्यति' की विभीषिकाने मूर्छित कर दिया । कुमारिल जैसे विकराल वैदिक सिंह[1] जागे और

---

१ कुमारिलमृगेन्द्रेण, हतेषु जिनहस्तिषु ।
निष्प्रत्यूहमवर्धन्त, श्रुतिशाखा समन्ततः । (कस्यचित्प्राचीनकवे)

नास्तिक दिग्गजों पर टूट पड़े। उनकी वेद-गर्जनासे दिशाएँ गूँज उठीं। "वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते" के पाशविक अत्याचारोंसे वेद-उपासकोंका खून उबला। शूर शिव, वीर प्रताप और नर-वर बन्दाकी तलवारोंने नर-पिशाचोंका खूब खून पिया। अधिक क्या? हिन्दुओं को प्राणोंसे भी अधिक अपने वेद प्यारे हैं। इनकी महत्ता उनके रोम-रोममें रमी है।

संज्ञा-सौष्ठव

सर्व प्रथम सुन्दर, मधुर, सुवच, सुबोध और संक्षिप्त 'वेद' संज्ञा ही चित्त आकृष्ट किए विना नहीं रहती। 'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं'[२] की मर्यादाका दायित्वपूर्ण निर्वहन देखते ही बनता है। केवल 'वेद'[३] नाम ही नहीं, सभी 'श्रुति' आदि पर्याय शब्द एक एक सैद्धान्तिक महत्ता व्यक्त कर रहे हैं। जिसका यहाँ दिग्दर्शन कराना अनुचित न होगा।

'श्रुति'— कर्ण कुहर-परम्परामें बहती आई है यह वैदिक अमर धारा[४]। अत इसका अपौरुषेयत्वावेदी नाम 'श्रुति' पड़ा। 'अनुश्रव' समाख्याका भी यही रहस्य है — "गुरु-पाठादनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदः" (वाचस्पति)[५]

---

२. महाभाष्य० १।१।१ प्रयोजनाधि०

३. 'वेद' शब्दका अर्थ द्वितीय सोपानके आरम्भमें देखो।

४. "वेदस्याध्ययनं सर्वं, गुर्वध्ययन पूर्वकम्।
वेदाध्ययनसामान्यादधुनाऽध्ययनं यथा॥" (श्लो० वा० वाक्याधिकरणे)

५. सां० त० कौमु० का० २।

'आम्नाय'—'आ ,, अभ्यासे' ,, धातुसे निष्पन्न 'आम्नाय' शब्द "धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" (ऋ० १०।१९०।३) का अभ्यास सिद्धान्त अपना कर अपने वाच्य वेदकी नित्यता बता रहा है। 'समाम्नाय' शब्द भी ऐसा ही है —"आम्नायसमाम्नायशब्दयोर्वेद एव प्रसिद्धेः" (नागेशः)

त्रयी—गद्य, पद्य और गीतिमय मन्त्र-समुदायका नाम त्रयी है। चारों वेदोंका समस्त काव्य तीन प्रकारका ही है। अतः वेदचतुष्टयीको 'त्रयी' नामसे भी पुकारते हैं। षड्गुरु-शिष्यने लिखा है—

विनियोक्तव्य रूपश्च, त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।
ऋग्यजु सामरूपेण, मन्त्रो वेदचतुष्टये॥
ऋक्पादबद्धा गीतं तु, साम गद्यं यजुर्मतं।
चतुर्ष्वपि वेदेषु, त्रिधैव विनियुज्यते॥ (सर्वानु० वृत्ति)*

छन्द—सर्व विध कामनाओंका पूरक वेद अपने उपासकको इस तरह छिपाता है कि मृत्यु कभी ढूँढ नहीं सकती—"देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते छन्दोभिरच्छादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्" मन्त्रब्रा० (३।४।२)

स्वाध्याय—स्व+अध्याय, कुलपरम्परागत वेद ही (सु+आ+अध्याय) विधिपूर्वक अध्ययनीय है—"स्वाध्यायोऽध्येतव्य" (तै. आ २।१५।७)

: लघुशब्देन्दुशेखरे 'इतिमाहेश्वराणीत्यस्य' पातनिका
* निरुक्तालोचनादुद्धृत पृ० १५१

आगम तथा निगम — श्रोत्रोंमें आगमका आना, मुखसे निगमका निकलना — भारतीयोंकी इस आदान प्रदानात्मक स्वाध्याय प्रवचनकी पवित्र अविरल शृंखलाके अवद्योतक 'आगम' और 'निगम' नाम हैं। आगम आस्तिकमूर्धन्य कुमारिलका सर्वस्व है — "आगमप्रवणश्चाहम्" (श्लो० वा० उपक्रम० ७) निगम महर्षि व्यासका कल्पद्रुम है — "निगमकल्पतरोः गलित फलम्" (भा० १।१।३)

मनु-शब्दोंमें वेद

वैदिक महत्तासे परिचित मनु हृदयके उद्गारोंको सुनकर निश्चय हो जाता है कि वेद जैसी निर्मल, टिकाऊ, गुरु और गम्भीर दूसरी वस्तु विश्वमें न हुई है और न होगी —

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं, यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्मं, ह्युपधर्मोऽन्य उच्यते॥ (मनु० ४।१४७)

आलस्य छोड़कर यथा समय वेदका नित्य अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि यही मुख्य धर्म है और दूसरे धर्म गौण हैं।

पितृदेवमनुष्याणां, वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च, वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ (१२।९४)

पितर, देव तथा मनुष्योंका वेद ही एक सनातन पथ-प्रदर्शक है। वेदकी गम्भीरताका पता लगाना मानव शक्तिके सर्वथा बाहर है। यह वास्तविक स्थिति है कि किसी पुरुषसे वेद रचा नहीं गया; अपौरुषेय है।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोका, श्चत्वारश्चाश्रम- पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च, सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ (१२।९७)

ब्राह्मणादि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, भविष्य और वर्तमान सबका प्रकाश वेदसे ही है ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपंच, रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते, प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥ (१२।९८)

त्रिगुणात्मक मायासे — जगत्कारण शब्दादि तन्मात्राओंकी सृष्टि भूरादि वेद-शब्दपूर्वक ही होती है ।

बिभर्ति सर्वभूतानि, वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये, यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ (१२।९९)

वेदशास्त्र नित्य सर्व प्राणियोंका धारण पोषण करता है । जैसा कि ब्राह्मणमें कहा है — "हविरग्नौ हूयते सोऽग्निरादित्यमुपसर्पति तत्सूर्यो रश्मिभिर्वर्षति-तेनान्नं भवति । अथेह भूतानामुत्पत्तिः स्थितिश्चेति हविर्जायते" अर्थात् वेदकी ही आज्ञासे आहुति अग्निमें पड़ती है । उद्दीप्त अग्निदेव अन्तरिक्ष और द्युके देवता विद्युत् तथा सूर्यसे सम्बन्ध स्थापित करता है । जिससे सूर्यरश्मियां जल खींचती हैं और विद्युत्की सहायतासे वर्षा होती है । वर्षासे अन्न, अन्नसे प्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति होती है । वेदकी ही यह सब महिमा है । । अतः वेदको मैं सर्वोपरि मानता हूँ । जीवोंके परम पुरुषार्थका साधन वेद ही है ।

सैनापत्यं च राज्यं च, दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च, वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (१२।१००)

सैन्य-संचालन, प्रजा-पालन, दण्ड-निर्माण और सर्वलोकाधिपत्य यदि कोई कर सकता है, तो एक वेद-शास्त्रवेत्ता ही कर सकता है।

सर्वाङ्गीण वेद

सर्वाङ्गीण निसर्ग सुन्दर वेदकी सतत सेवाके लिए समग्र शब्दजगतको लालायित देख, शिक्षादि पहले ही योग्य स्थान रोक चुके हैं—

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षु, निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते॥
(पा. शिक्षा ४१, ४२)

वस्तुतः शिक्षादिका जन्म इसीलिए था। वे अपने उद्देश्य-साधनमें पूर्णतया सफल हैं—"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं वेदाङ्गानि च" (निरु० १।६।९) अर्थात् पहले ऋषि मन्त्र-द्रष्टा थे। उन्होंने अपने परवर्ती मन्त्र-दर्शन-सामर्थ्य-रहित व्यक्तियोंको मन्त्रोंका उपदेश किया। जब मनुष्योंकी उपदेश-ग्रहण-शक्ति भी क्षीण हो चली तब (बिल्मग्रहणाय) वैदिक रहस्य-ज्ञानके लिए वेदाङ्गोंकी रचना हुई। इन अङ्गोंका स्वल्प परिचय देना नितान्त आवश्यक है। अतः मुण्डकोपनिषत्-श्रुत क्रमानुसार[1] दिग्दर्शन कराया जाता है—

1. "शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो ज्योतिषमिति" (मुण्ड० उ० १।१।५)

१. शिक्षा—वर्ण, स्वरादिके उच्चारण-प्रकार-प्रतिपादक ग्रन्थ, शिक्षा कहलाते हैं। विभिन्न शाखा सम्बन्धी शिक्षा ग्रन्थ बहुत हैं। निरुक्तालोचनमें वेदविच्चूडामणि सत्यव्रत सामश्रमीने अपनी देखी तीस शिक्षाओंका उल्लेख किया है :— (१) याज्ञवल्क्य शिक्षा, (२) कात्यायनी शि०, (३) वासिष्ठी शि०, (४) पाराशरी शि०, (५) माण्डव्य शि०, (६) अमोघानन्दिनी शि०, (७) लघ्वमोघानन्दिनी शि०, (८) माध्यन्दिनीय शि०, (९) लघुमाध्यन्दिनीय शि०, (१०) अमरेशी शि०, (११) केशवी शि०, (१२) स्वराङ्कुश शि०, (१३) षोडशश्लोकी शि०, (१४) अवमाननिर्णय शि०, (१५) स्वरभक्तिलक्षण शि०, (१६) क्रमसन्धान शि०, (१७) गलदृक् शि०, (१८) मन स्वार शि०, (१९) प्रातिशाख्यप्रदीप शि०, (२०) वेदसूत्रपरिभाषा शि०, (२१) यजुर्विधान शि०, (२२) स्वराष्टक शि०, (२३) क्रमकारिका शि०, (२४) पाणिनीय शि०, (२५) नारदीय शि०, (२६) गौतमी शि०, (२७) लोमशी शि०, (२८) माण्डूकी शि०, (२९) शौनकी शि०, (३०) आथर्वण शि०।

एक शिक्षा स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत व्याख्या सहित छपी है। जिसे पाणिनिमुनि—प्रणीत लिखा गया है। परन्तु उमरावसिंह[२] शेरगिल अपनी शुद्ध तथा पूर्ण की हुई प्रतिमें

२ शिमला निवासी सुन्दरसिंह मजीठियाके बड़े भाई उमरावसिंह हैं। इन्होंने शिक्षाके विषयमें गम्भीर अनुसन्धान किया है। अपनी शुद्धप्रति १९४० ई० में वेददर्शनाचार्य म० म० स्वामी गङ्गेश्वरानन्द महाराजको भेंट की थी। महाराजश्रीके 'जगद्गुरुश्रीचन्द्र—'पुस्तकालय' में वह प्रति सुरक्षित है।

आपिशलिमुनिकृत लिखते हैं—"स्वा०. दयानन्दजीको ज्ञात नहीं था कि यह आपिशलिमुनिकृता शिक्षा है॥"

२. कल्प—मन्त्र विनियोगादिपूर्वक याग-प्रयोगोंका शृंखला-बद्ध निरूपण तथा गर्भाधानादि संस्कारोंका विधान कल्प ग्रन्थोंमें होता है। ये प्रधानतया तीन प्रकारोंमें विभक्त हैं—(१) श्रौत सूत्र, (२) गृह्य सूत्र, (३) धर्म सूत्र, । श्रौत सूत्रोंमें श्रौत यज्ञ-सम्बन्धी मन्त्रादिविनियोग शाखान्तरस्थ कर्म-अङ्गोंका संग्रह तथा गृह्यसूत्रोंमें गर्भाधानादि संस्कारोंका विशद विवेचन होता है। धर्मसूत्र वर्णाश्रमोपयोगी धर्मो और सामाजिक नियमोंको बताते हैं। इन सूत्रग्रन्थोंका परिचय द्वितीय सोपानमें सम्बद्ध शाखाओंके साथ दिया जायगा।

३. व्ययाकरण—वेदाङ्गोंमें व्याकरणका विशेष स्थान है। शब्द-साधुत्व और साधु शब्द-प्रयोग—विज्ञान तथा प्रकृति प्रत्यय विभाग पुरस्सर शब्दार्थ—ज्ञान व्याकरणायत्त है। वैदि व्याकरण-सम्बन्धी प्राचीन-से प्राचीन प्रयत्न प्रातिशाख्योंके रूपमें पाया जाता है। प्रातिशाख्यका अर्थ है—प्रत्येक वैदिक शाखामें प्रचलित-शब्द-स्वरूप एवं पाठ* क्रमादिका नियम-बद्ध वर्णन। इस समय [illegible]: प्रातिशाख्य-ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) ऋक्-प्रातिशाख्य,

---

* "अप्रादौ नाधिकारोऽस्ति, सम्यक्शास्त्रमजानतः ।
प्रातिशाख्यमतो ज्ञेयं, सम्यक् पाठस्य सिद्धये ॥"
(शु. यजु. प्राति. उव्वटभाष्योपक्रमे)

(२) शुक्लयजुः—प्रातिशाख्य, (३) साम-प्रातिशाख्य, (४) अथर्व-प्रातिशाख्य, (५) चतुरध्यायी, (६) तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य।

१. ऋक्-प्रातिशाख्य—इसे पार्षद-सूत्र भी कहते हैं। महर्षि शौनक प्रणीत है। इसकी प्रायः छन्दो बद्ध रचना है। इसमें तीन काण्ड-या अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय छः पटलोंमें विभक्त है। ऋक् प्रातिशाख्य सर्व-प्रथम १८५७-५९ ई० में रेगनियर (A. Regnier) ने तीन भागोंमें प्रकाशित किया था। पश्चात्, जर्मनीमें मैक्समूलर (Max Muller) ने सटिप्पण नागरी लिपिमें मुद्रित कराया। १९३१ ई० में उव्वट-भाष्यसहित ऋग्वेद-प्रातिशाख्यका सम्पादन वैदिक पुङ्गव मङ्गलदेव शास्त्री (M. A. D. Phil. Oxon) ने बड़ी योग्यता और परिश्रमके साथ किया है[१]।

२. शुक्लयजुः—प्रातिशाख्य—कात्यायनमुनि—प्रणीत कहा जाता है। आठ अध्यायोंमें विभक्त है। उव्वट-भाष्य-सहितके कलकत्ता-प्रकाशनानुसार सब ७२७ सूत्र हैं।

३. साम-प्रातिशाख्य—महर्षि-पुष्प-रचित होनेसे पुष्प-सूत्र भी इसकी संज्ञा है। 'सामवेद पुष्प-सूत्र' के नामसे १९०८ ई० में जर्मनीसे आर० सायमनने प्रकाशित किया था। सायण-भाष्य युक्त साम-प्रातिशाख्यके नामसे भी मुद्रित है।

४. अथर्व-प्रातिशाख्य—सूत्र-बद्ध है। विश्वबन्धु शास्त्रीने बहुतसे हस्त-लेखोंसे सम्पादन किया है।

---

१. इसमें अध्याय-विभाग नहीं केवल पटल और सूत्र हैं।

५. चतुरध्यायी—नामक ग्रन्थ भी अथर्व-प्रातिशाख्य है। जिसका सम्पादन अमेरिकाके प्रसिद्ध विद्वान् ह्विटने (W. D. Whitney) ने किया और अंग्रेजी अनुवाद भी साथ छपाया था।

६. तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य—में २४ अध्याय हैं। सूत्रात्मक रचना है। अन्तिम अध्यायोंके अन्तमें इक्के-दुक्के श्लोक भी हैं और हैं मार्केके। अन्तिम श्लोक है—

पदक्रमविशेषज्ञो, वर्णक्रमविचक्षणः।
स्वरमात्राविभावज्ञो, गच्छेदाचार्यसंसदम्॥

सभी प्रातिशाख्योंका विषय-विश्लेषण यदि किया जाय तो स्थूल रूपसे सात विभाग किए जा सकते हैं—(१) वर्ण-समाम्नाय=स्वरव्यञ्जनोंकी गणना तथा उनके उच्चारणादिके नियम। (२) सन्धि=अच्, हल्—विसर्ग आदि। (३) प्रगृह्य संज्ञा, अवग्रह=पद-विभाग-नियम और इसके अपवाद। (४) उदात्त, अनुदात्त शब्दोंकी गिनती, स्वरित-भेद तथा आख्यात-स्वर। (५) संहित-पाठ और पद-पाठमें भेद-प्रदर्शक नियम, ह्रस्व, प्लुत, दीर्घ आदिका विवरण। (६) अथर्व-प्रातिशाख्यमें संहिता-पाठ एवं पद-पाठके अतिरिक्त क्रम पाठके भी नियम बतलाये गये हैं और तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमें जटा-पाठके भी नियम निर्दिष्ट हैं। (७) साम-प्रातिशाख्यमें सामवेदकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी गीतियोंके प्रश्लेष, विश्लेष, वृद्ध अवृद्ध, गत, अगत, उच्च, नीच, क्रुष्ट, अक्रुष्ट संकृष्टादि उच्चारणकृत भेदोंका वर्णन भी पाया जाता है।

आचार्य पाणिनिका बहुत कुछ प्रयत्न लौकिक भाषा-नियन्त्रणके लिए है; फिर भी स्वर प्रकरण एवं वैदिकी प्रक्रियाका संकलन वैदिक जगत्में भी कम ख्याति नहीं रखता। वैदिक व्याकरण पर पाश्चात्य विद्वानोंने भी महत्त्वके ग्रन्थ लिखे हैं – जिनमें मैक्डानल (A. A. Macdonell) की १९१० ई० में जर्मनीसे प्रकाशित बड़ी वैदिक ग्रामर बड़े मार्केकी है।

४. निरुक्त वेदका प्रधान अङ्ग है। क्योंकि निरुक्ताध्ययनके विना मन्त्रोंका आशय स्पष्ट होता ही नहीं* निरुक्तमें वैदिक शब्दोंका सोपपत्ति निर्वचन उदात्त ढंगसे किया गया है। प्राचीन कालमें कई निरुक्त थे। इस समय यास्क-निरुक्त प्रचलित है। यह निघण्टुका भाष्य है। इस निघण्टु और निरुक्तकी अटपटी पहेलीमें हमारे कई गण्य मान्य विद्वान् उलझ चुके हैं। जैसे कि मधुसूदन सरस्वतीकी आलोचना सत्यव्रत सामश्रमीने अपने निरुक्तालोचनमें की है — "अनतिप्राचीनानामाचार्यकोटिनामन्यतमः स्वर्गतो विमुक्तो वा ख्यातो मधुसूदनः सरस्वती सङ्ग्राहकं प्रबन्धे 'प्रस्थानभेद' नामेति तत्रेदं लिखितं दृश्यते — 'निघण्टु संज्ञकः पञ्चाध्यात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनैव कृत' इति। तदेतल्लिखनं तदीयमेतद्विषयकं भ्रान्तमेव प्रकटयति' (निरुक्तालोचन पृ० २२)। अतः इस विषयको विस्पष्ट करनेके

* "अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते" (निरु० १।५।१)

लिए श्रौतमुनि चरितामृतका× गवेषणापूर्ण लेख ही उद्धृत किया जाता है —

"श्रुतिसिद्ध* मुनि सुजन मुनिके शिष्य थे और युधिष्ठिरकी १२वीं शताब्दीमें हुए हैं। इनके समकालीन यास्क मुनि वेदोंके अद्वितीय पण्डित थे। यास्कको अपनी विद्वत्ता पर पूर्ण अभिमान था। श्रुतिसिद्ध मुनिको छोड़कर विश्वभरमें और कोई विद्वान् यास्ककी टक्करका न था। श्रुतिसिद्ध मुनि पर यास्ककी अगाध श्रद्धा थी। इसके दो कारण थे। प्रथम यह कि यास्क और श्रुतिसिद्धका लक्ष्यैक्य था। जिस प्रकार यास्क वेद-प्रचारमें दत्तचित्त था; ठीक उसी तरह उस पवित्र कार्यमें श्रुतिसिद्धका प्रयत्न कम न था। दूसरा कारण यह था कि यास्कका जहाँ कहीं वेद वेदाङ्गोंमें कोई विषय सन्देहास्पद होता था; यास्क श्रुतिसिद्ध मुनिसे उसमें अपना सन्देह निवृत्त कर लिया करते थे। जब कभी किसी सन्दिग्धार्थक वैदिक शब्दका अर्थ पूछने यास्क उनके पास जाते तो श्रुतिसिद्धजी अपने एक गुटकेमें उस शब्दको देख कर यास्कके सन्देहको दूर कर दिया करते थे।

× प्रख्यात उदासीन सम्प्रदायका ऐतिहासिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। जिसके प्रणेता हैं — अहमदाबादस्थ विशाल वेद-मन्दिर-प्रतिष्ठापक वेद-दर्शनाचार्य म० म० स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी।

* उदासीन सम्प्रदायकी सनत्कुमारादि गुरुपरम्परामें चालीसवाँ स्थान श्रुतिसिद्ध मुनिका है। ये ही निघण्टुके रचयिता हैं। पूर्वाश्रममें इनका नाम कश्यप था।

. . . एक दिन मुनिजीसे यास्कने कहा — 'भगवन्! यदि आप इस पुस्तिकाको मुझे देदें। तो आपका मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह होगा। वैसे तो मैं आपका अब भी ऋणी हूँ। परन्तु इस अद्वितीय पुस्तकका दान कर मुझे अपना ऐसा ऋणी बनाइए कि मैं जन्मजन्मान्तरमें भी आपके इस महान् उपकारसे उऋण न हो सकूँ। आप विश्वास करें! इसमें मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। मेरा विचार है कि मैं इस पर एक संक्षिप्त भाष्य लिख कर वेदार्थकी प्राप्तिमें प्रति दिन बढ़ रही अड़चनोंको दूर कर दूँ . . .। मुनिने यास्ककी ओर देख कर कहा — धीमन्! आप जो कुछ कहते हैं सब यथार्थ है। आपकी वेदों पर अगाध श्रद्धा देख कर हम आपको यह वेदार्थ-भानु अर्थात् निघण्टु देते हैं।' उस पुस्तकके नैघण्टुक, नैगम और दैवत — ये तीन काण्ड और पांच अध्याय थे। तब यास्कने उस पर निरुक्त लिखा।"

इस लेखसे स्पष्ट हो जाता है कि निघण्टु यास्क-निर्मित नहीं; निघण्टुका भाष्य निरुक्त यास्ककी कृति है। इसके प्रथम अध्यायमें 'निघण्टु' शब्द निर्वचनपूर्वक विषय-प्रवेश, द्वितीय और तृतीयमें नैघण्टुक काण्डकी व्याख्या, चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ अध्यायमें नैगम काण्डका व्याख्यान, तदनन्तर छः अध्यायोंमें देवता-तत्व प्रकाशनपुरस्सर दैवत काण्डकी विशद व्याख्या है। शेष दो अध्याय परिशिष्ट स्वरूप हैं। प्रथम परिशिष्टमें आत्म-

तत्वोपदेश और द्वितीय परिशिष्ट अध्यायमें परम पुरुषार्थ-साधनोंकी चर्चा है।

(९) छन्दः शास्त्र—गायत्री आदि छन्दोंका स्वरूप बताते हैं। इस शास्त्रका मूल स्रोत ऐ०ब्राह्मण १–५, ६ में पाया जाता है। किन्तु आदिम आचार्य पिङ्गल* मुनि माने जाते हैं। इनके विषयमें प्रसिद्ध है—'शेषनागके अवतार थे'। एक बार पृथिवीकी सैर करके पाताल जाते समय इन्हें साक्षात् मृत्यु स्वरूप भगवान् गरुड़ मिल गये। गरुड़को झाँसा देनेका मार्ग शीघ्र निकाल लिया। पिङ्गल नागको ज्ञात था कि गरुड़ वैदिक छन्दोंका उत्कट जिज्ञासु है; तुरन्त सूत्र-बद्ध भाषामें छन्दोंका सुन्दर स्वरूप बताते हुए निकट समुद्रकी ओर सरकने लगे। गरुड़ मुग्ध भावसे सुन ही रहा था कि समुद्रमें पिङ्गल डुबकी लगा गये—

> यो विविधवर्णमात्राप्रस्तारात्सागरं प्राप्य।
> गरुड़मवञ्चयदतुलः स हि नागः पिङ्गलो जयति॥
> (पिङ्गलवार्तिककार चन्द्रशेखर)

सम्वत् १९२६ में कलकत्ता-मुद्रित हलायुध वृत्ति-सहित पिङ्गल सूत्रके आधार पर इसमें आठ अध्याय हैं। जिनमें क्रमशः १५, १६, ६६, ५३, ४५, ४२, ३४, ३२ सूत्र हैं। प्रथम अध्यायमें 'मकारादि' संज्ञा, द्वितीयमें 'पाद, तृतीयमें गायत्र्यादि

---

* पिङ्गलादिभिराचार्यैः यदुक्तं लौकिकं द्विधा।
मात्रावर्णविभेदेन, छन्दस्तदिह कथ्यते॥ (केदारभट्ट)

छन्दोंके भेद, चतुर्थमें वैदिक आर्षछन्द, गणछन्द, मात्राछन्द और अक्षर-छन्द, पञ्चममें यतिवृत्त, षष्ठ तथा सप्तममें लौकिक छन्द, अष्टममें गाथा, प्रस्तारादि निरूपित हैं। वैदिक छन्द प्रायः अक्षर× छन्द ही होते हैं। प्रधानतया इनके सात भेद हैं—(१) गायत्री, (२) उष्णिक्, (३) अनुष्टुप्, (४) बृहती, (५) पंक्ति, (६) त्रिष्टुप्, (७) जगती। प्रत्येक आठ आठ प्रकारका है। इस प्रकार सब ५६ भेद हो जाते हैं। जिनकी अक्षर-संख्या निम्नांकित चक्रमें बताई गई है।

छन्द-संख्या-चक्र

	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप	जगती
१. आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२. दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३. आसुरी	१५	१०	१३	१२	११	१०	९
४. प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५. याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६. साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७. आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८. ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

× अक्षर गणनामें स्वर स्वतन्त्र अक्षर गिना जाता है; व्यंजन स्वरके साथ मिलकरही अक्षर माना जाता है। जैसे :—'अग्निमीळे' में चार अक्षर हैं—अग्, नी, मी, ळे।

इस चक्रसे स्पष्ट जाना जाता है कि आर्षी गायत्रीमें २४ अक्षर हैं; आर्षी उष्णिक्में २८ और आर्षी अनुष्टुप्में ३२ इत्यादि। यदि किसी वैदिक मन्त्रमें नियत छन्द-अक्षर पूरे न हों तो सन्धि-विश्लेषणादिके द्वारा संख्या-पूर्ति की जाती है। जैसे:—'चाग्नये'='च अग्नये'। 'स्वर्'का 'सु अर' और 'वरेण्यम्' का 'वरेणियम्'—इस भावका सूचक पिङ्गल-सूत्र है—"इयादि पूरणः" (३।२)। इस सूत्रका अर्थ हलायुधके शब्दोंमें है—"यत्र गायत्र्यादौ छन्दस्यक्षरसङ्ख्या न पूर्यते; तत्र इयादिभिः पूरयितव्या"। इस उपायसे भी यदि अक्षर-संख्या पूरी न होकर, कम रह जाय तो उस छन्दको विच्छन्द कहते हैं। एक अक्षरन्यूनको 'निचृत्' और दो अक्षर न्यूनको 'विराट्' विशेषण लगाकर बोला जाता है। जैसे:—२३ अक्षरकी गायत्रीको 'निचृत्' गायत्री कहते हैं। अधिकाक्षर छन्द, अतिच्छन्द कहलाता है। एक अक्षर अधिक हो तो 'भूरिक्' तथा दो अक्षर अधिक हों तो उस छन्द-नामके पूर्व स्वराट् विशेषण लगाकर बोलते हैं। अक्षरकी न्यूनता, अधिकताका यह अर्थ कदापि नहीं कि मन्त्र दुष्ट या नष्ट हो जाता है—"नवा एकेनाक्षरेण च्छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्" (ऐ० ब्रा० १।६) इसका अर्थ सायण-शब्दोंमें है—"एकेनाक्षरेण न्यूनेनाधिकेन

---

* 'आदि' शब्दसे 'अव' यण् सवर्णदीर्घ, गुण, वृद्धि आदिका ग्रहण होता है।

वा च्छन्दांसि नैव नश्यन्ति। तथा च द्वाभ्यामक्षराभ्यां न्यूनाभ्याम-विकाभ्यां वा न नश्यन्ति"। शक्करी आदि अन्य छन्दोंके विस्तृत ज्ञानके लिए कात्यायन-प्रणीत सर्वानुक्रम तथा पिङ्गल-सूत्रादि देखना चाहिए।

६. ज्योतिष — वैदिक क्रियाओंका नियत समय ज्योतिष शास्त्रकी सहायतासे जाना जाता है। ज्योतिषका विषय अगाध महासागर है। इस पर अधिक प्रकाश डालनेके लिए विशेष समय और अधिक स्थान, प्रयत्नकी अपेक्षा है। अतः यहाँ अधिक नहीं कहते। अङ्गपरिचयके साथ साथ प्रयोजन भी सामान्यतया कहा ही जा चुका है। परन्तु शुद्धाद्वैतमूलक पुष्टि-मार्ग-प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्यके शब्दोंमें अङ्ग-प्रयोजन मनोरम ढंगसे वर्णित है। जिसका उद्धरण-लोभ संवरण नहीं कर सकते—

षडङ्गानि तथा वेदे, वेदरक्षा फलानि हि।
स्वरूपतोऽर्थतश्चैव, ह्यनुष्ठानात् त्रिधा हि तत्॥
शिक्षा छन्दः स्वरूपे तु, निरुक्तं व्याकृतिस्तथा।
अर्थे ज्योतिस्तथा कल्पो, ह्यनुष्ठाने प्रयोजकः॥
(सर्वनिर्णय प्र० ७२, ७३)

अर्थात् शिक्षादि छहों अङ्गोंका सामान्य प्रयोजन है — 'वेद-रक्षा' इसके तीन प्रकार हैं — 'स्वरूप-रक्षा', 'अर्थ-रक्षा' और 'अनुष्ठान-रक्षा'। 'स्वरूप-रक्षा' में शिक्षा तथा छन्दः-शास्त्रका; 'अर्थ-रक्षा' में निरुक्त एवं व्याकरणका; 'अनुष्ठान-रक्षा' में ज्योतिष

और कल्पका उपयोग होता है। यदि शिक्षादि वेद-रक्षक न होते, तो "ओं नमः सिद्धम्" का "ओना मासी धम्" बना डालनेवाले गुरुलोग "अग्निमीळे"-को कब ज्योंका त्यों छोड़ने वाले थे? अर्थका अनर्थ और प्रयोग-व्यत्यय होकर ही रहता। इन अङ्गोंकी कृपासे लाखों वर्ष-पूर्वकी वही वैदिक आनुपूर्वी आज हमारे समक्ष है जिसकी महत्ता विश्वमें छाई हुई है।

आर्षपाठ-प्रणालीमें वेद

सबसे महत्त्वकी बात यह है कि जहाँ अन्य जातियोंका स्वल्पायु भी साहित्य नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है; वहाँ ऋषिगण-प्रचारित विलक्षण पाठ-प्रणालीसे अनुप्राणित होकर हमारी अनादि वेद-वाणी अक्षुण्णरूपेण प्रवाहित पाई जाती है। प्रातःस्मरणीय महर्षियोंकी उस पाठ-प्रथाका परिचय प्राप्त किये विना पाठकोंको सन्तोष न होगा। अतः पूर्वजोंका वह अगाध धैर्य और दुर्धर्ष परिश्रम संक्षित शब्दोंमें रखा जाता है :—

एक ही ऋक्संहिता पारायण-भेदसे तीन प्रकारकी हो जाती है—(१) निर्भुज संहिता (रूढ़), (२) प्रतृण्ण संहिता (योग), (३) उभय संहिता (योगरूढ़)।

१. निर्भुज संहिता—वह उच्चारण है जिसमें ऋक्-पदोंका सन्धि-विच्छेद नहीं होता—"सन्धेर्विवर्तनं निर्भुजं वदन्ति" (ऋक्प्राति० ३।१।३)। जैसे :—"ओषधयः

संवदन्ते सोमेन सहराज्ञा[1] " (ऋ० १०।९७।२२)— यही संहिता-पाठ कहा जाता है।

२. प्रतृण्ण संहिता— सन्धि-रहित (शुद्ध) ऋक्-पदोंका उच्चारण प्रतृण्ण संहिता कहलाता है— "शुद्धाक्षरोच्चारणं च प्रतृण्णम्" (ऋक्प्राति० ११।१३)। जैसे :— "ओषधयः। सं। वदन्ते। सोमेन। सह। राज्ञा।"— इसीका नाम पद-पाठ[2], पद-संहिता भी है।

३. उभय संहिता— 'निर्भुज' और 'प्रतृण्ण'— इन दोनोंका समावेश जिस उच्चारणमें है; उसे 'उभय संहिता', क्रम संहितादि नामोंसे पुकारते हैं— "उभयं व्यासमुभयमन्तरेण" (ऋक्प्राति ११।१३)। जैसे :— "ओषधयः सं। संवदन्ते। वदन्ते सोमेन। सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।"

उक्त त्रिविध संहिताएँ ऐतरेयारण्यकमें भी श्रुत हैं— "यद्धि सन्धिं विवर्तयति तन्निर्भुजस्य रूपम्, अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृण्णस्य, अग्र उ एवोभयमन्तरेणोभयं व्याप्तं भवति" (ऐ० ३।१।३) अर्थात् जिस उच्चारणमें सन्धि सुरक्षित है, वह निर्भुजका तथा जो सन्धि-रहित (शुद्ध) पदोंका उच्चारण है, वह प्रतृण्णका स्वरूप है; और जो दोनोंसे सम्बन्ध रखकर आगे जटा, घनादि-रूपमें विकृत हो जावे, उसे उभय संहिता कहते हैं।

---

१. मन्त्रादिके उदाहरणोंमें यहाँ (ऋग्वेदका) पूर्वार्ध यथासम्भव रखा जायगा।

२. "पदविच्छेदोऽसंहितः" (ऋक्प्रातिशाख्य)।

विकार-अष्टक

[1]क्रमसंहिताका सहारा लेकर आठ विकार किये जाते हैं— (१) 'जटा', (२) 'माला', (३) 'शिखा', (४) 'रेखा', (५) 'ध्वज', (६) 'दण्ड' (७) 'रथ', और (८) 'घन'। महर्षि व्याडिने विकृतिवल्लीमें इनका विस्तृत वर्णन किया है—

**"जटा माला शिखा रेखा, ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः, क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥"**
(वि० १।५)

१. 'जटा'—इसमें क्रमसंहिताके दोनों पद तीन बार बोले जाते हैं। प्रथम और तृतीय बारमें अनुलोमसे, मध्यमें विलोम[2] (विपरीतक्रम) से पदोंका उच्चारण होता है। जैसे :—

"ओषधयस् सं, समोषधयः, ओषधयस् सम्। सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन। सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह। सह राज्ञा, राज्ञा सह, सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा॥"

२. 'माला'—मालाके दो भेद हैं—'क्रममाला' और 'पुष्पमाला' विस्तार-भयसे केवल क्रममालाका उदाहरण

---

१. "क्रमः स्मृतिप्रयोजनः": (ऋक्प्राति० सू० ४।१८)।

२. "अनुलोमविलोमाभ्यां, त्रिवारं हि पठेत्क्रमम्।
विलोमे पदवत्सन्धिः, अनुलोमे यथाक्रमम्॥"

रखा जाता है। इसमें मन्त्रार्धके आरम्भिक दो पद आरोह और अन्तमें दो पद अवरोह-क्रमसे बोले जाते हैं।[1]

क्रममाला—"ओषधयः सं। राज्ञेति राज्ञः।
सं वदन्ते। राज्ञा सह।
वदन्ते सोमेन। सह सोमेन।
सोमेन सह। सोमेन वदन्ते।
सह राज्ञा। वदन्ते सं।
राज्ञेति राज्ञा। समोषधयः।"

३. शिखा[2]—वह 'जटा' शिखा कहलाती है; जिसके उत्तरमें क्रम-प्राप्त पदका पाठ हो। जैसे :—

"ओषधयः सं, समोषधय, ओषधयः सं— वदन्ते।
सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते— सोमेन।
वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन— सह।
सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह— राज्ञा।
सह राज्ञा, राज्ञा सह, सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा॥"

४. रेखा[3]—क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच पदोंको

---

१. "मूयान्क्रमदिपर्यासादर्धेर्धेस्यादितोऽन्ततः।
अन्तं चादिं नयेदेव क्रममालेति गीयते॥"

२. "पदोत्तरां जटामेव, शिखामार्याः प्रचक्षते।"

३. क्रमाद्द्वित्रिचतुष्पञ्चपदक्रममुदाहरेत्।
पृथक् पृथग् विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्॥

प्रथमवार अनुक्रम और द्वितीयवार व्युत्क्रमसे बोलकर अन्तमें आरम्भके दो पदोंका वैसा ही उच्चारण करना रेखा है जैसे :—

दो पद = ओषधयः सं । समोषधयः । ओषधयः सं ॥
तीन पद = सं वदन्ते सोमेन । सोमेन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

चार पद = वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । राज्ञा सह सोमेन वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥ सोमेन सह । सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥

५. ध्वज[1] — क्रम–पदोंका आरोह और अवरोह साथ साथ जहाँ होता है; उसे ध्वज कहते हैं । उदाहरणमें उक्त ऋचाका उत्तरार्ध भी रहेगा । उत्तरार्ध यह है — " यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि " । ध्वज-उदाहरण:—

" ओषधयः सं । पारयामसीति पारयामसि ।
सं वदन्ते । राजन् पारयामसि ।
वदन्ते सोमेन । तं राजन् ।
सोमेन सह । ब्राह्मणस्तं ।
सह राज्ञा । कृणोति ब्राह्मणः ।
राज्ञेति राज्ञा । यस्मै कृणोति ।
यस्मै कृणोति । राज्ञेति राज्ञा ।
कृणोति ब्राह्मणः । सह राज्ञा ।

---

१. सूत्रादादेः क्रमं सम्यगन्त्यादुत्तारयेद्यदि ।
वर्गे च ऋचि वा यत्र पठनं स ध्वजः स्मृतः ॥

ब्राह्मणस्तं । सोमेन सह ।
तं राजन् । वदन्ते सोमेन ।
राजन् पारयामसि । स वदन्ते ।
पारयामसीति पारयामसि । ओपवय सं ॥"

६. दण्ड — अर्द्धर्चके प्राथमिक दो पदोंका अनुक्रमसे तथा विपरीतक्रमसे उच्चारण । ततः पूर्व-पूर्वपदका क्रमशः उत्तर-उत्तर पदके साथ जोड़ा बनाकर समुच्चय करते हुए प्राथमिक विपरीत-क्रम जोड़के पूर्व प्रत्येक पर्यायका अन्तिम पद जोड़ते जाना दण्ड-पाठ कहलाता है* । जैसे :—

"ओपधयः सं । समोपधयः ।
ओपधयः सं । सं वदन्ते ॥ वदन्ते समोपधयः ।
ओपधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥ सोमेन वदन्ते समोपधय. ।
ओपधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह ॥ सह सोमेन वदन्ते समोपधय. ।
ओपधयः स । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह । सह राज्ञा ॥ राज्ञा सह सोमेन वदन्ते समोपधयः ।
ओपधय. सं । स वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह । सह राज्ञा ॥ राज्ञेति राज्ञा ।"

* "क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तरम् ।
अर्धर्चादेवमुक्तोऽय क्रमदण्डोऽभिधीयते ॥"

७. **रथ**—ऋचाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धका साथ साथ दण्डकी तरह उच्चारण करना रथ× कहलाता है। इसके 'द्विचक्रक', 'त्रिचक्रक', 'चतुश्चक्रक'—तीन भेद हैं। विस्तार-भयसे सब भेदोंको न दिखा कर केवल द्विचक्रक तथा चतुश्चक्रकका कुछ अंश दिखाया जाता है।

१. द्विचक्रक—"ओषधयः सं। यस्मै कृणोति।

समोषधयः। कृणोति यस्मै।

ओषधय सं। यस्मै कृणोति।

सं वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

वदन्ते समोषधयः। ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

ओषधयः सं। यस्मै कृणोति।

स वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

वदन्ते सोमेन। ब्राह्मणस्तं।

सोमेन वदन्ते समोषधयः। तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

ओषधय सं। यस्मै कृणोति।

सं वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

वदन्ते सोमेन। ब्राह्मणस्तं।

सोमेन सह। तं राजन्।

सह सोमेन वदन्ते समोषधयः। राजंस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

ओषधयः सं। यस्मै कृणोति।

सं वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

× "पादशोऽर्धशो वापि यथोक्तो दण्डरथः।"

वदन्ते सोमेन । ब्राह्मणस्तं ।
सोमेन सह । तं राजन् ।
सह राज्ञा । राजन् पारयामसि ।
राज्ञेति राज्ञा । पारयामसीति पारयामसि ॥"

ऐसे ही भिन्न भिन्न ऋचाओंके कोई भी दो अर्थ इस 'रथ'—प्रथासे पढ़े जा सकते हैं।

(२) चतुश्चक्ररथमें दो अर्थोंके चार चार पदोंका उच्चारण किया जाता है—

"ओषधयः सं, सोमेन सह । यस्मै कृणोति, तं राजन् ।
समोषधयः, सह सोमेन । कृणोति यस्मै, राजंस्तं ।
ओषधयः सं, सोमेन सह । यस्मै कृणोति, तं राजन् ।
सं वदन्ते, सह राज्ञा । कृणोति ब्राह्मणः, राजन्
पारयामसि ।" इत्यादि

प्रथम घन— अन्तसे आदि और आदिसे अन्त तक द्विगुण क्रम-पाठका नाम घन* है—

"राज्ञेति राज्ञा । सह राज्ञा । सोमेन सह । वदन्ते सोमेन । सं वदन्ते । ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह । सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥"

* 'घन' के दो भेद होते हैं—'घन' और घनक्रम । प्रत्येक भेदके दो प्रकार होते हैं—इनमेंसे प्रथम घनका लक्षण है—

अन्तात्क्रमं पठेत् पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत् ।
आदिक्रमं नयेदन्तं घनमाहुर्मनीषिणः ॥

द्वितीय घन — शिखा-पाठके अनन्तर उसका विपरीत पाठ, अन्तमें शिखाके पदोंका पाठ ही (द्वितीय) घन[1] कहलाता है :—

ओषधयः सं, समोषधयः, ओषधयः सं,—वदन्ते । वदन्ते समोषधयः ।
ओषधयः सं वदन्ते, ॥

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते, —सोमेन । सोमेन वदन्ते सं ।
सं वदन्ते सोमेन ॥

वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन,–सह । सह सोमेन वदन्ते । वदन्ते सोमेन सह ॥

सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह,—राज्ञा । राज्ञा सह सोमेन ।
सोमेन सह राज्ञा ॥

सह राज्ञा; राज्ञा सह, सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥

आम्नायके ये आम्रेडन इसलिए महर्षियोंने अपनाये हैं कि इन पाठ-प्रथाओंमें बद्धकर उनकी स्वाध्याय गंगा सदैव शुद्ध बनी रहे; कोई प्रक्षिप्त घुसने न पावे । आर्ष पाठ-प्रणालीका यहाँ स्वल्प परिचय दिया गया है । विशेष ज्ञानके लिए महर्षि व्याड़ि-कृत विकृतिवल्ली तथा अन्य चरण-व्यूहादि ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिए ।

[1] शिखामुक्त्वा विपर्यस्य, तत्पदानि पुनः पठेत् ।
अयं घन इति प्रोक्त, इत्यष्टौ विकृतीः पठेत् ॥

जब सामवेदकी ओर हमारा ध्यान जाता है, तब वहाँ की अभेद्य रक्षा-पङ्क्ति देखते ही मुग्ध हो जाते हैं। यहाँ की अक्षर-गणना-पद्धति किसे आश्चर्यमें नहीं डालती? यह पद्धति एक ऐसा सन्देश है जिसमें एक एक मात्रा जकड़ी हुई है। जैसे:—

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥
१०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो
धृष्णवीयानः। ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥
१०८६ आ-यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥
(धा० १८।उ० २।स्व० ४) (ठी) ॥

इस सूक्तके अन्तमें दी हुई कोष्ठित संख्या (धा० १८। उ० २। स्व० ४) का तथा (ठी) अक्षरका भाव हमें निकालना है। प्रथम मन्त्रमें * चिह्न-रहित अक्षर हैं—र्नः स, स, न्तु = ४
द्वितीय ,, ,, ,, —घ, ष्ण, वि, र = ४
तृतीय ,, ,, ,, —य, दु, श, त, क्र, का, ज, रि, र, श, = १०

* चिह्न-परिचयके लिए द्वितीय सोपानका 'साम'-प्रकरण द्रष्टव्य है।

पूरे सूक्तमें १८ अक्षर चिह्न रहित हैं। यही 'घा० १८' का अर्थ है। बिना चिह्नके अक्षर 'धारी'+ कहलाते हैं।

दूसरी सङ्ख्या 'उ० २' का अर्थ=पूरे सूक्तमें दो उदात्त हैं — णो[२उ], णो[२उ]।

तीसरी सङ्ख्या 'स्व० ४' का तात्पर्य है=पूर्ण सूक्तमें चार स्वरित हैं — ग्यो[३र]:, व[४र]:, मं[४र], ची[४र]।

इस स्वर-गणनासे सौवर प्रमाद कदापि नहीं हो सकता।

अब इन गणिताङ्कोंको निर्भ्रान्त रखनेके लिए अन्तमें तीनों अङ्कांकुरोंका बीजाक्षर 'ठी' रक्खा गया है।

इसका रहस्य जाननेके लिए विभाग करें — ठ्+ई। उक्त धारी संख्या १८ को ५ पर भाग देनेसे शेष बचता है — ३। इस ३ संख्याको व्यक्त करनेके लिए तृतीय वर्गका × 'ठ्' व्यंजन

+ धारी संख्यामें मन्त्रके अन्तिम चिह्न-शून्य अक्षर नहीं गिने जाते। अतः यहाँ 'जा.', 'म', 'भिः' छोड़कर १८ संख्या होती है।

× वर्ग ५ होते हैं — क-वर्ग च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग प-वर्ग।

जहाँ शेष नहीं बचता वहाँके लिए प-वर्ग चुना जाता है। यदि कहीं पूरे सूक्तमें एक भी उदात्त वर्ण न हो तो 'य', 'र', 'ल', 'व', 'श', में से उचित वर्ण छाँटा जाता है; और, धारी संख्यामें से एक घटाकर शेष प्रक्रिया की जाती है। जहाँ सूक्त भरमें उदात्त और स्वरित दोनों नहीं होते वहाँ 'ओ' का निर्देश होता है। उदात्तकी अभावावस्थामें जब प्राप्त धारी संख्या ५ पर पूरी बँट जाती है तब 'ह' सङ्केताक्षर होता है।

चुना गया है। 'उ० २' की सूचना तृतीय वर्गके द्वितीय अक्षरसे दी गई है। शेष 'स्व०।४' का प्रकाशक अपनी स्वर-पंक्तिका चतुर्थ स्वर 'ई' है।

ऊपर उत्तरार्चिक-गणितका निर्देश दिखाया गया। पूर्वार्चिकमें केवल निर्देश-क्रम भिन्न होता है—प्रथम 'स्वरित' मध्यमें उदात्त और अन्तमें धारी संख्या निर्दिष्ट होती है।

यह हमारी अनुपम गणित है। बहुत सी विदेश-मुद्रित संहिताओंमें ऊट-पटाँग छप गई है। अपनी कसौटी पर चढ़ा कर परख लेनी चाहिए।

उक्त संकेतानुवीक्षणकी सहायतासे यदि 'वेद' शब्दका अन्वीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि यह अक्षय सिद्धान्त रत्नोंका एक महान् रत्नाकर है। इस स्वल्प काय पुस्तिकामें किसी भी दिशाकी ओर संकेत मात्र किया जा सकता है—

१—'वेद' शब्द = उ+अ+इ+द के। उ, अ, इ से ऋग, यजु, साम—इस वेद-त्रयीकी सूचना है और 'द' का अर्थ है—पर्वत = अचल = अथर्व*। इस प्रकार चारों वेदोंकी व्यञ्जना 'वेद' शब्दमें पाई जाती है।

२—'वेद' शब्दके वा, अ, आ, ई और द भी टुकड़े सहजमें किये जा सकते हैं। वा, अ, आ—ये तीनों वायु,

* थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः। (नि० दै० ११।२।१७) = स्थिरप्राणोरक्षितयोग्यप्रतिपादकोऽथर्ववेद इत्यर्थः।

अग्नि, आदित्य नामोंके आदिम अक्षर होनेसे अग्नि आदि तीन देवोंके प्रतिपादक कहे जा सकते हैं। इन तीनों देवोंकी ई= सम्पत्तिकाद=दाता वेद है। वेदोंमें उक्त देवोंकी ही सम्पत्ति निहित है — "अग्नेः ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः।" उसी सम्पत्ति (विद्या) का दान भगवान् वेद मनुष्योंको कर रहा है। अथवा अग्नि आदि तीनों देवोंमें सम्पत्ति-वितरण कर रहा है। अर्थात् वेद एक पीयूष-पूर्ण महानद है। जो अध्यात्मादि त्रिविध अग्नि आदिके क्षेत्रोंमें समकक्षभावसे प्रवाहित होता हुआ प्रत्येक तम-आच्छन्न, मलिन, संतप्त अन्तरात्मामें कान्ति, पावनता, शीतिमामयी लक्ष्मीका निरन्तर प्रदान करता है। अतः 'वेद' नाम सार्थक है।

३ — उ+अ+इ+द — इन वेदपद-खण्डोंका अर्थ होता है — कामारि शम्भु :— उ=भगवान् शम्भु अ=विष्णुके पुत्र इ= कामके द=खण्डक हैं। अतः शिवरूप वेद शैवोंका परम आराध्य देव है।

४ — वेद शब्दके व+ई+द खण्ड करने पर अर्थ निकलता है — व=समुद्रकी (पुत्री) ई=लक्ष्मी द=भार्या है जिसकी अर्थात् विष्णु भगवान्। विष्णुरूप वेद वैष्णवोंका सर्वस्व ही है।

५ — 'वेद' (व+ई+द) शब्दका भाव है — व= बलवान् भगवान् की ई=लक्ष्मी भगवतीका द=दाता वेद। शाक्तोंको और चाहिए क्या? भगवतीके परम पावन शुद्ध स्वरूप-

ज्ञानका दाता यदि वेद है तो शक्ति-उपासकोंकी अपार श्रद्धाका भाजन क्यों न होगा!

६—सूर्य-उपासकोंके उपास्य देवका सूचक भी 'वेद' शब्द है—वेद=उ+आ+ई+द। अपनी स्वर-पंक्तिमें 'उ' का पाँचवाँ और आ का दूसरा स्थान है। ५+२=७ सप्त स्वर-युक्त ई=साम-लक्ष्मीके द=दाता अथवा सप्तवर्ण-युक्त ई=प्रभा लक्ष्मीके दाता हैं सूर्य नारायण। अतः सौर भक्तोंकी अटल श्रद्धा वेद पर है।

७—पञ्चदेव-उपासकोंमें से शेष रहे गाणपत्य। इनकी भी वेद पर श्रद्धा किसीसे कम नहीं। क्योंकि 'वेद' शब्दके व, ई, द, टुकड़ोंका अर्थ व=मंगल ई=लक्ष्मी ऋद्धि सिद्धिके द=दाता गणेश हैं।

८—इस प्रकार आर्य-संस्कृति के आधारस्तम्भ समस्त देवोंके उपासकोंकी सामूहिक श्रद्धास्पदताका गौरव एकमात्र वेदको ही है। 'वेद' शब्द इतना ही नहीं बताता, अपि तु पुरुषार्थ-चतुष्टय-साधन वेदकी सूचना भी देता है—धर्म-सूचना 'व' खण्ड[1] से, अर्थ-बोध 'ई' खण्डसे, काम-ज्ञान 'इ' टुकड़ेसे और मोक्ष-अवगमन 'द' भागसे[2] भली भाँति होता है। अतः व+ई+इ+द से बने 'वेद' शब्दको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चतुष्टय-साधन-प्रतिपादकतामें सन्देह-गन्ध तक नहीं रह जाती।

---

१. व का अर्थ कल्याण (शब्दस्तो॰ म॰)। कल्याणमय धर्म है।

२. दो अवग्रहनेका 'द' बना है; जिसका अर्थ—संसार-नाशक माश किया जा सकता है।

शब्द, अर्थ एवं अनुष्ठानमें से किसी भी दृष्टि कोणको रखकर जब हम गहरा अनुसन्धान करते हैं, तब वेद-गौरव उत्तरोत्तर प्रकट होकर आनन्द-विभोर करता जाता है। इसका कारण मेरी समझमें यह आता है कि अपरिमित दिव्य भूमा परावर परमानन्द महासागर वेदोदरमें भरा हुआ है "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः[1]"। गवेषक जैसे-जैसे इसके निकट सम्पर्कमें आता जाता है। वैसे-वैसे उसकी मधुरता व्यक्त होती जाती है — "चरन्वै विन्दते मधु[2]"। साक्षात्कार होते ही समस्त श्रम दुःख दूर हो जाते हैं — "भिद्यते हृदय-ग्रन्थिः[3]"। फिर भेद कहाँ ? — भिद्येते तासां नामरूपे[4]"। तब भय किसका ? — "अभयं हि वै ब्रह्म भवति[5]"। बस यही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। जिसकी प्राप्तिका विश्वमें एकमात्र साधन है भगवान् वेद — "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति" (मै. आ. ६।२२)।

स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं,
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्[6] ॥

(अथर्व, १९।७१।१)

---

१. गी० १५।१५। २. ऐतरेय ब्रा० ३३।२। ३. मु. उ. २।२।८। ४. प्रश्नो० ६।५। ५. बृह० उ० ४।४।२५।

६. वेदमाता पावनी की पावनी स्तुतिके लिए,
यत्न थोड़ा-सा किया है मानवी हितके लिए।
आयु पुत्र प्राण लक्ष्मी कीर्ति गो-धन तेज दे,
अन्तमें प्रेरे जनोंको ब्रह्म-दर्शनके लिए ॥



द्वितीय सोपान

वेद की रूप—रेखा

'वेद' शब्द और उसका अर्थ

वेदोंमें 'वेद' शब्द दो प्रकारका उपलब्ध होता है—एक अन्तोदात्त[1] और दूसरा आद्युदात्त[2]। अन्तोदात्त 'वेद' शब्दका व्यवहार प्रायः कुश-मुष्टि विशेष[3] में होता है। दूसरा आद्युदात्त 'वेद' शब्द हमारे विचारका विषय है। जो ज्ञान, लाभ, सत्ता और विचार इन चार अर्थोंवाले 'विद्' धातुसे करण-कारकमें 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है कार्याकार्य-ज्ञानका हेतु, अलौकिक आत्म-दर्शन-लाभका प्रधान साधन, विस्तृत कीर्ति-सत्ताका एकमात्र निमित्त और अद्वैत-विचारक महर्षियोंका सर्वस्व शब्द समुदाय। निम्नाङ्कित श्लोकोंसे यह भाव सुव्यक्त हो जाता है—

---

१ वेद (यजु० २-२१) इत्यादि।

२ वेदैः (ऋ० १-७०-५) इत्यादि।

३ कुशके पचास तिनकोंको मिलाकर बीचसे मरोड़ ऐसी गाँठ लगाई जाती है कि बैठे हुए बछड़ेके अगले जानु (घुटने)का आकार धारण कर ले।

वेत्ति कार्यमकार्यं च, विन्दतेऽनुत्तमं धनम् ।
विस्तृतिं विद्यते कीर्त्या, विन्देऽद्वैतमहो यतः ॥१॥
अनवद्यं स्वतो मानं, ज्ञानविज्ञानशेवधिम् ।
अनादिनिधनं वेदं, तं प्राहुर्वैदिका जनाः ॥२॥

वेदोंके विभाग

महर्षि आपस्तम्बादि[1] सूचित करते हैं कि वेदोंके प्रधानतया दो विभाग हैं—संहिता और ब्राह्मण। आरण्यक भाग ब्राह्मणके अन्तर्गत है। उपनिषद् ग्रन्थोंमेंसे अधिकतर उपनिषद् आरण्यकों, कुछ ब्राह्मणों और परिगणित संहिताओंके अन्तर्भूत हैं। कतिपय विद्वान् सुगमताके लिए वेदोंके चार विभाग कर लेते हैं—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक और (४) उपनिषद्।

१. संहिता—कुछ मन्त्रों[2] का ऐसा समुदाय, जो पद-पाठादिक्रमसे द्विजातियोंकी वंश-परम्परामें अनादि कालसे चला आता है,

२. ब्राह्मण—मन्त्रकी एक संज्ञा ब्रह्म[3] भी है—ऐसे मन्त्र ब्रह्मका निर्वचन, विनियोग और कर्मोंका विधान, परिवर्धनादि

१—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आप० श्रौ० सू० २४।१।३१; सत्या० श्रौ० सू० १।१।७; कात्या० प्रतिज्ञा सूत्र) इत्यादि।

२—कर्म-सापेक्ष देवतादि पदार्थोंका स्मरण दिलानेवाले वाक्योंको मन्त्र कहते हैं। मन्त्र-लक्षणादिका विस्तार जै० सू० २।१।३२में तथा बृहद्देवता. १।३४में देखना चाहिए।

३—"ब्रह्म वै मन्त्रः" (शत० ७।१।१।५)

करनेवाले वाक्योंको यहाँ ब्राह्मण कहा जाता है। जैसा कि वाचस्पतिके वचनसे प्रकट है—

नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य, विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव, ब्राह्मणं तदिहोच्यते ॥

एक भ्रान्त धारणा और उसका निराकरण

कई पाश्चात्य तथा अर्धपाश्चात्य व्यक्ति ब्राह्मण भागको वेद नहीं मानना चाहते। उनका पक्ष है कि ब्राह्मण भाग वेदका व्याख्यान है; वेद नहीं। संहिता भाग मात्र वेदपदास्पद है। दूसरी बात यह है कि गोपथ ब्राह्मणादिमें वेद और ब्राह्मणका साहित्य बताया है—"**एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः**" गोप० पू० २।१०)। दो भिन्न भिन्न पदार्थोंका ही साहित्य लोक-दृष्ट है। अतः वेदसे ब्राह्मणको पृथक् ही मानना होगा। ऐसे भ्रमोंका मूल निदान भाष्यग्रन्थोंका अनध्ययन है। भाष्य-वाक्योंमें परस्पर व्याख्यानव्याख्येयभाव रहने पर भी 'भाष्यत्व' समान माना जाता है। यदि व्याख्येय भाष्यके व्याख्यान अभाष्य नहीं, फिर व्याख्येय संहितारूप वेदके व्याख्यान वचन ब्राह्मण अवेद कैसे हो सकते हैं? रही बात दूसरी 'सब्राह्मणाः' की— इसका निराकरण महर्षि पतञ्जलि बहुत पहले कर चुके हैं—"**समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते**" (महाभा० पस्पशा०) अर्थात् समुद-वाचक शब्दका व्यवहार

समूह-घटक प्रत्येक एकाईमें भी देखा जाता है जैसे किसी देशके प्रत्येक भागको उस देशके नामसे पुकारते हैं। इसी प्रकार मन्त्र तथा ब्राह्मण—इन दोनोंके समुदायका वाचक वेद शब्द प्रत्येक भागमें प्रयुक्त हो सकता है। जहाँ 'सब्राह्मणाः' कहा गया है, वहाँ वेद शब्दका अर्थ है—केवल संहिता भाग। संहिता और ब्राह्मणका व्यक्तित्व भिन्न भिन्न होनेसे साहित्य-सामञ्जस्य सम्यक् बिग जाता है। इसी प्रकार और भी शङ्काओंके समाधान दूरदर्शी महर्षियोंने कर दिये हैं। यहाँ उनका उल्लेख विस्तार भयसे नहीं किया जाता।

३. आरण्यक — प्रायः वानप्रस्थाश्रमके उपयोगी कृत्य-कलापका रहस्यमय वर्णन करनेवाले, अरण्य-पठनीय वाक्य-राशिकी प्रख्या आरण्यक है। ऐतरेय ब्राह्मण-भाष्यके प्राक्कथनमें सायणाचार्यने लिखा है — "आरण्यव्रतरूपं ब्राह्मणम्" अर्थात् वनवासी वानप्रस्थके यज्ञादि कर्म बतानेवाले ब्राह्मणवाक्य ही 'आरण्यक' कहे जाते हैं। आरण्यकका दूसरा नाम रहस्य भी आता है।

४. उपनिषद् — अध्यात्म विद्याके गूढ़तम रहस्योंके विशद विवेचनात्मक-वचनोंको उपनिषद् कहते हैं। जन्म-मरण रोगकी अचूक औषध यदि कहीं है तो भारतीयोंकी इस महानिधिमें है। उपनिषदोंका चरम ध्येय, आत्माकी अपरोक्षानुभूति तक अधिकारीको पहुँचाना है। वेदोंके अन्तिम भाग तथा निर्णीत सिद्धान्तरत्नोंकी मञ्जूषा होनेसे उपनिषद्की दूसरी समाख्या 'वेदान्त' है।

वेदोंके भेद और सम्प्रदाय

चार वेद — वेद चार हैं — (१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद, (४] अथर्ववेद। इन चारों वेदोंको 'त्रयी' भी कहते हैं। 'त्रयी' शब्द पर पर्याप्त प्रकाश पूर्व सोपानमें डाला जा चुका है। इन वेदोंके दो साम्प्रदाय प्रचलित हैं — एक ब्रह्म-सम्प्रदाय और दूसरा आदित्य सम्प्रदाय। वराहादि पुराणोंमें उपाख्यान मिलता है —

१. ब्रह्म-सम्प्रदाय

कल्पारम्भमें शङ्खासुर उपाधि धारी हयग्रीवके साथ भगवान् विष्णुने घोर युद्ध किया। विजयलक्ष्मी भगवान्के हाथ लगी। इतना ही नहीं, जो सामान दैत्यने दूसरोंका चुरा रक्खा था, उसे भी भगवान् लूट ले आये। जिसमें वेद और पृथिवी आदि थे। भगवान्ने पृथिवीको अपने स्थान पर टिका दिया और वेदको ब्रह्माके पास पहुँचाकर सावधान रहनेका अनुरोध किया। ब्रह्माजीने तुरन्त उस वेदकी दो प्रतियाँ कर लीं। एक अपने पास रक्खी और दूसरी प्रति भगवान् आदित्यकी अति गुप्त लाइब्रेरी (Library) में जमा करा दी कि कहीं मुझसे फिर कोई छीन न ले। एक और बुद्धिमत्ताकी — शीघ्र ही वसिष्ठादिको उत्पन्न करके वेद-अध्यापन आरम्भ कर दिया। विधिपूर्वक ब्रह्मासे अध्ययन करके महर्षि वसिष्ठने अपने पुत्र शक्तिको, शक्तिने अपने पुत्र पराशरको तथा पराशरने अपने नौका-उत्पन्न पुत्र भगवान् कृष्णद्वैपायनको पढ़ा

दिया। द्वापरका अन्तिम समय था। भगवान् पराशरने उस एक वेदके चार भेद किये। सब ऋक् मन्त्र एकत्र कर ऋग्वेद बनाया, यजुर्मन्त्रोंको चुनकर यजुर्वेद, साममन्त्रोंसे सामवेद और शेष विविध विषयोंसे अथर्ववेदका सङ्कलन किया। इस महान् कार्यके उपलक्ष्यमें आपको वेदव्यासकी उपाधि मिली। महर्षि वेदव्यासने चारों वेद पृथक् पृथक् चार शिष्यको पढ़ाये — पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद, जैमिनिको सामवेद और सुमन्तु[1]को अथर्ववेद। शिष्य-प्रशिष्योंकी लम्बी परम्परामें चारों वेदोंकी अनन्त शाखाएँ हो गईं — बस यही ब्रह्म-सम्प्रदाय है।

२. आदित्य-सम्प्रदाय

योगीश्वर याज्ञवल्क्यने पहले ब्रह्मसम्प्रदायस्थ महर्षि विदग्ध शाकल्यसे अध्ययन करना आरम्भ किया। परन्तु किसी कारण वश गुरुसे खट-पट होगई। वहाँसे चल दिये। पढ़ा–पढ़ाया वहीं आचार्यके सम्मुख ढेर कर दिया कि कहीं गुरु शाप न दे डालें। अब याज्ञवल्क्य अपने मामा आचार्य वैशम्पायनसे पढ़ने लगे। किन्तु वाह रे! भाग्य! मामासे भी यह विचित्र विद्यार्थी भिड़ पड़ा। वहाँ भी अध्ययन किया हुआ एक एक अक्षर उगल दिया और चल पड़े। अब याज्ञवल्क्यने निश्चय कर लिया कि किसी मनुष्यको गुरु न बनाऊँगा। ऐसा ही हुआ घोरतर तपस्या की। भगवान् आदित्यको प्रसन्न कर लिया।

---

१. यह सुमन्तु जैमिनि महर्षिके पुत्र सुमन्तुसे भिन्न ही होंगे।

सूर्यनारायणने चारों वेद पढ़ा दिये। गुरु–आज्ञासे याज्ञवल्क्यने बहुत विस्तार किया—यहाँसे आदित्य सम्प्रदाय चला।

एक विरोध—भागवतादि पुराणोंसे पता लगता है कि आदित्यसे याज्ञवल्क्यने यजुर्वेद ही लिया और स्कन्दपुराणादिसे सिद्ध होता है कि चारों वेदोंका अध्ययन किया—

"स तथेति प्रतिज्ञाय, प्रविश्यादित्यवाजिनः।
कर्णेऽपठत्ततो वेदाँश्चतुरोऽपि हि तन्मुखात्॥"
(स्कन्द. पु. नागर. २७८)

आत्मपुराणमें भी ऐसा ही है—

"चतुरोऽध्यापयामास स्थापयित्वा रथे निजे।"
(३७-४०)

और जनकके यहाँ शास्त्रार्थ-विजयी याज्ञवल्क्य अपने एक शिष्यको सामश्रवाके नामसे सम्बोधित करके गो-दल हँका रहे हैं। सामश्रवाका अर्थ—साम-अध्ययन करनेवाला है। इससे भी सिद्ध होता है कि याज्ञवल्क्य चारों वेद पढ़े थे और पढ़ाते थे।

परिहार—उक्त विरोधका परिहार करना आवश्यक है। जब वेद एक ही था उस समय उसका नाम था यजुर्वेद—इसमें प्रमाण आगे यजुर्वेदके प्रकरणमें दिखावेंगे। अतः उस एक वेदको चार वेद भी कह सकते हैं और एक भी। यही कारण है कि कहीं आदित्यसे एक वेदका प्राप्त करना लिखा मिलता है। कहीं विभाग-कालीन दृष्टिसे चारों वेदोंका पढ़ना पाया जाता है। यह

निश्चित है कि याज्ञवल्क्य चतुर्वेदी थे और इनसे ही आदित्य-सम्प्रदायका प्रसार हुआ।

१—ऋग्वेद

वेदोंके नाम–करणसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि चारों वेदोंमें मन्त्र तीन प्रकारके आते हैं—

नाम–करण १–ऋचा, २–साम, ३–यजु।

१–ऋचा=पादबद्ध=छन्दोयुक्त=पद्यमय मन्त्रोंको ऋचा कहते हैं भले ही वह किसी वेदमें क्यों न पठित हो।

२–साम=जिन ऋचाओं पर साम (रागविशेष) गाया जाता है, उन्हें साम मन्त्र कहते हैं यद्यपि **"गीतिषु सामाख्या"** इस जैमिन सूत्रमें केवल गानका नाम ही साम बताया गया है। परन्तु साम शब्दसे गान युक्त मन्त्रका भी बोध हो सकता है। जैसे गोवटादि पदोंकी शक्ति मीमांसक–मत में जातिमें होने पर भी उनसे लक्षणादिके द्वारा व्यक्तिका बोध होता है। वैसे ही यहाँ साम शब्दकी शक्ति तो गानमें ही है बोध गान वाले ऋक् मन्त्रोंका भी होगा। इसी लिए कई स्थलोंमें सामका अर्थ मिलता है—प्रगीत मन्त्र।

३–यजु := गद्यात्मक मन्त्रोंको यजुर्मन्त्र कहते हैं। अब ऋग्वेद शब्दकी ओर देखें। ऋक् संहिता और ऋग्ब्राह्मणादिके समुदायका नाम ऋग्वेद है। ऋग् बहुल ग्रन्थविशेषको ऋक् संहिता कहा जाता है। ऋग्वेदकी एक समाख्या 'होत्र' भी है क्योंकि यज्ञमें इसके मन्त्रोंका उच्चारण प्रायः होता ही किया करता है।

महर्षि पतञ्जलिने पस्पशाह्निकमें कहा है कि—

"एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्"

ऋग्वेदकी शाखाएँ : अर्थात् २१ शाखाएँ ऋग्वेदकी हैं। चरणव्यूहमें उन इक्कीस शाखाओंके पाँच प्रकार बताये गये हैं—"एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति—शाकला, बाष्कला, आश्वलायनीयाः, शाङ्खायनीया, माण्डूकेयाश्चेति"। अर्थात् ऋग्वेदियोंकी शाखाएँ पाँच प्रकारकी होती हैं—(१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) आश्वलायनीय, (४) शाखायनीय और (५) माण्डूकेय।

१. शाकल शाखाओंके भेद—शाकल्य ऋषिके पाँच शिष्य थे—(१) मुद्गल, (२) गोखल, (३) वात्स्य, (४) शालीय, (५) शिशिर—इन शिष्योंके भेदसे शाकल शाखाएँ पाँच हो गई। विष्णुपुराणमें लिखा है—

"देवमित्रस्तु शाकल्यः, संहितां तामधीतवान्।
चकार संहिताः पञ्च, शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः॥
तस्य शिष्यास्तु ये पञ्च, तेषां नामानि मे शृणु।
मुद्गलो गोखलश्चैव, वात्स्य शालीय एव च॥
शिशिरः पञ्चमश्चासीत्, ।"

(२) बाष्कल शाखाओंके भेद—चार हैं। जैसा कि पुराणोंमें है—

"चतस्रः संहिताः कृत्वा, बाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास, शुश्रूषाभिरतान् हि तान्॥

बोध्यां तु प्रथमां शाखां, द्वितीयामग्निमातरम् ।
पाराशरीं तृतीयां तु, याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥"

ब्रह्मां. पु. पू० ३४ । २६ । २७।

अन्यान्य प्रमाणोंमें बोध्यके स्थान पर बौध्य, अग्निमातरकी जगह अग्निमठर और याज्ञवल्क्यके बदले जातूकर्ण्य पाठ मिलता है। अतः गवेषणा शील विद्वान् उक्त चार शाखाओंके नाम इस प्रकार बताते हैं —(१) बौध्यशाखा, (२) अग्निमाठरशाखा, (३) पराशर शाखा और (४) जानूकर्ण्यशाखा।

३. **आश्वलायनीयशाखा** तथा उसके भेद अज्ञानके गर्भमें हैं। आश्वलायन श्रौत सूत्र तथा षड्गुरु–शिष्यके लेखसे[1] आश्वलायन शाखाका अनुमान मात्र होता है।

४. **शांखायन शाखाके भेद** — चार हैं – (१) शांखायन, (२) कौषितकि, (३) महाकौषीतकि, (४) शाम्बव्य।

५. माण्डूकेय शाखा की भी वही दशा है, जो आश्वलानीय शाखाकी है। इसी प्रकार नाम मात्र तो बहुतसी शाखाओं प्रशाखाओं-के इतस्ततः निकल आते हैं। परन्तु उपलब्ध साहित्य थोड़ा ही है।

उपलब्ध शाखाएँ ऋग्वेदकी केवल दो शाखाएँ उपलब्ध हैं — शाकल और बाष्कल। ये भी दोनों पृथक् पृथक् नहीं छपी

१ "शाकल्यस्य संहितैका बाष्कलस्य तथापरा ।
द्वे संहिते समाश्रित्य, ब्राह्मणान्येक विंशतिः ॥"
(सर्वानुक्र० उपोद्घात)

हैं; अपि तु आजकलकी मुद्रित ऋग्वेद-संहितामें दो प्रकारके विभाग देखे जाते हैं — एक मण्डल, अनुवाक, सूक्त और मन्त्रोंका और दूसरा अष्टक, अध्याय, वर्गादिका विभाग। प्रथम विभाग बाष्कल-संहिताका और दूसरा शाकलका है। परन्तु अनुवाकानुक्रमणी-के अनुसार शाकलसे बाष्कलमें आठ सूक्त अधिक होते हैं। अत इन दोनोंका भेद अभी और परीक्षणीय है। सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद संहिता सर्व – प्रथम विदेशोंमें[1] छपी पश्चात् भारतमें। अब तो इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। छपी हुई शाकल संहितामें आठ अष्टक प्रत्येक अष्टकमें–आठ अध्याय; सब मिलाकर ६४ अध्याय, ८५ अनुवाक १०२८ (मतान्तरमें १०१७) सूक्त, २०२४ वर्ग १०५८९ (मतान्तरमें १०५८० और १०४६७] मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं।

---

1. सर्व-प्रथम मैक्समूलर (Max Muller) ने सन् १८४९ से १८७४ तकके सतत परिश्रमसे सायणभाष्य-सहित ऋग्वेदसंहिता प्रकाशित की। फिर एक और जर्मन विद्वान् (Theodor Aufrecht) ने रोमन लिपिमें जर्मनीसे १८६१–१८६३ में उक्त संहिताका सम्पादन किया। इधर भारतीय भी जागे और बम्बईसे मैक्समूलर-सम्पादित संहिताकी प्रति-लिपि छपा दी। मैक्समूलरने अभियोग चला दिया और परिणाम स्वरूप अपना नाम उस पर भी चेप दिया। सन् १८९१ में पं. राजाराम शास्त्री तथा शिवराम शास्त्रीने बहुत परिश्रमसे उक्त संहिताका संस्करण निकाला। Max Muller ने अपना दूसरा संस्करण भी १८९२ ई० में

बाष्कलका विवरण इस प्रकार है--

मण्डल	सूक्त–संख्या	मन्त्र–संख्या	ऋषि
१	१९१	२००६	मधुच्छन्दादि-
२	४३	४२९	गृत्समद
३	६२	६१७	विश्वामित्र
४	५८	५८९	वामदेव
५	८७	७२७	अत्रि
६	७५	७६५	भरद्वाज
७	१०४	८४१	वसिष्ठ
८	१०३	१६३६	कण्व[1]
९	११४	११०८	मधुच्छन्दादि-
१०	१९१	१७५४	त्रित आप्त्य दि-
१०	१०१७	१०४७२	
बाल खिल्य	११	८०	
	१०२८	१०५५२	

निकाला। Vaidic Samshodhak mandal ने Tilak Samarak mandir (Poona) से १९३३ ई० प्रकाशित की है। सुन्दर पद-पाठ-सहित सायण-भाष्य इसमें हैं।

[1] कण्व गोत्रके सब ऋषि 'कण्व'-नामसे ही उल्लिखित हुए हैं।

ऋग्वेदके ब्राह्मण

इस समय ऋग्वेदके दो ब्राह्मण मुद्रित है—एक ऐतरेयब्राह्मण और दूसरा कौषीतकि। कुछ लोग कौषीतकि ब्राह्मणको शाह्वायन भी कहते हैं। परन्तु यह भिन्न प्रतीत होता है।

(१) ऐतरेय ब्राह्मण—महर्षि महीदासकी माताका नाम ईतरा था। महीदासकी ऐतरेय उपाधि थी। ऐतरेय (महीदास) ने इस ब्राह्मणका इतना प्रवचन किया कि उनके नामसे इसकी प्रसिद्ध हो गई। कई विद्वान इस ब्राह्मणका संबन्ध शाकल संहितासे बताते हैं। परन्तु ब्राह्मणके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अन्यान्य शाखा-संहिताओं के साथ भी इसका सम्पर्क है। यद्यपि मौलिक सिद्धान्त यह है कि एक शाखाकी एक संहिता, एक ब्राह्मण, एक आरण्यक, एक उपनिषत् और श्रौतादिसूत्र होते हैं। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मणका भी किसी एक ही शाखा—संहितासे जोड़-मेल होना चाहिए। तथापि ऐतरेय ब्राह्मणमें व्याख्यात मन्त्र केवल किसी एक संहिता में नहीं मिलते। अतः कई संहिताओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण आठ पञ्चिकाओंमें विभक्त है। प्रत्येक पञ्चिकामें पाँच पाँच अध्याय हैं। सब अध्याय=४० हैं। प्रथमकी छ पञ्चिओंमें सोमयाग वर्णित है; शेष दो पञ्चिकाओंमें राज्याभिषेक। हरिश्चन्द्रादिके उपाख्यान बहुत मनोरम ढंगसे दिये गये

हैं। गोविन्दस्वामी तथा सायणाचार्यके भाष्योंसे यह ब्राह्मण विभूषित है। किसी समय भारतके दक्षिणी प्रान्तोंमें इसका प्रचुर प्रचार था—ऐसा चरणव्यूहसे प्रमाणित होता है—

तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा, सह्याद्रि शिखरावधि।
आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं, बह्वृचश्चाश्वलायनी॥

अर्थ - तुंगभद्रा, कृष्णा और गोदावरी नदी तथा सह्याद्रिकी उपत्यकाओंसे लेकर आन्ध्र प्रान्त पर्यन्त ऋग्वेदी आश्वलायन शाखा वाले ऐतरेय ब्राह्मण—अध्येता ब्राह्मण रहते हैं। आजकल भी इन्हीं प्रान्तोंमें कुछ प्रचार रह गया है। इसका सम्पादन[1] बम्बई और पूनामें हुआ है।

२. कौषीतकि ब्राह्मण[2] — ३० अध्यायोंमें विभक्त है। इस पर माधव-पुत्र विनायक-रचित भाष्य है। आफ्रेक्ट (Aufrecht) बृहत् सूची भा० १ पृ० १३२के अनुसार बनारस संस्कृत कालेजमें कौषीतकि ब्राह्मण पर मिताक्षरा नामकी टीका हस्त लिखित है। इसकी प्रचार-भूमि उत्तरी गुजरात प्रान्त थी—ऐसा महीदास-उद्धृत एक श्लोकसे सिद्ध होता है—

---

१. प्रो० हाउग (M Haug) ने बम्बईसे १८६३ ई० में इसे प्रथम प्रकाशित किया था परन्तु आउफ्रेक्ट (Theodor Aufrecht) महोदयने कई उपयोगी सूचियोंके साथ बान नगरसे १८७९ ई०में प्रकाशित किया है। जिसकी लिपि रोमन है।

२. प्रो० लीण्डनर (Lindner) ने कौषीतकि ब्राह्मणका सम्पादन जेना नगरसे १८८७ ई० में किया था।

उत्तरे गुर्जरे देशे, वेदो बह्वृच ईरितः ।
कौषीतकि ब्राह्मणं, शाखा शाङ्खायनी स्थिता ॥
(चरणव्यू टी क २)

प्राचीन हस्त-लेखोंकी रक्षाका श्रेय आज भी इस प्रान्तको ही है।

दोनोंकी प्रतियोगिता

यद्यपि दोनों ब्राह्मण समान विषयकी चर्चामें व्यापृत हैं; किन्तु दृष्टि-कोण विलक्षण है। यदि कौषीतकि की रचना-शैली उत्कृष्टतर है, तो ऐतरेय विषय व्यापकतामें उन्नततर है। क्योंकि ऐतरेयके अन्तिम दशक-विचारित विषयोंको कौषितकि छूता तक नहीं। ऐतिहासिक विषय-वर्णनामें तो ऐतरेय अपना विशिष्ट स्थान रखता है। भारतीय प्राचीन विद्य-विद्यालयोंका मधुर स्मरण दिलाना तथा महत्त्वके भौगोलिक विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डालना ऐतरेय ब्राह्मणका ही काम है। इन दोनों ब्राह्मणोंके अतिरिक्त और भी बाह्वृच ब्राह्मणोंके नाम यत्र तत्र उद्धृत मिलते हैं। परन्तु उनका पूर्णतया ज्ञान नहीं।

ऋग्वेदके आरण्यक

ऋग्वेदीय आरण्यक ग्रन्थोंमें से दो उपलब्ध हैं—ऐतरेय और शाखायन।

१. ऐतरेय आरण्यक—पाँच काण्डोंमें बँटा है। काण्डोंको आरण्यक भी कहते हैं। पाँचों काण्डोंमें क्रमशः

९, ७, २, १ और ३ अध्याय हैं। सब मिलाकर १८ अध्याय होते हैं। प्रत्येक अध्यायमें कई खण्ड हैं। प्रथमके तीन काण्डोंमें महीदास (ऐतरेय) का, चौथेमें आश्वलायनका और पाँचवेंमें शौनकका नाम अधिक आता है। सायण-भाष्यके सहित मुद्रित[1] है।

२. कौषीतकि (शांखायन आरण्यक[2])—में १५ अध्याय हैं। इन अध्यायोंमें क्रमश: ८, १८, ७, १९, ८, २०, २३, ११, ८, ८, ८, ८, १, २, १ खण्ड हैं। सब खण्डोंका योग = १३७ हैं। यह आरण्यक ऐतरेय आरण्यकसे प्राय: विषय-निरूपणमें मिलता-जुलता है। इसके तीसरे अध्यायसे छठे अध्याय तक कौषीतकि उपनिषद् है। यह विद्वानोंको बहुत प्रिय है। है भी विश्वकी झाँकी—इसमें यदि कहीं विशाल विन्ध्य और हिमाद्रिके उन्नत शिखर, तो कहीं तरङ्गित है परमानन्द महासागर। कहीं विषय सुषुप्त शय्या पर चिरनिद्रित मानवको जागरण-निदेश, तो कहीं सहज विरक्त सत्वको मधुमय उपदेश। एक ओर है—देवराजका युद्ध भयङ्कर दूसरी ओर अति मृदु ज्ञान-गीत प्रियङ्कर!

---

१. सत्यव्रत सामश्रमी-द्वारा मुद्रित सायण-भाष्य-सहित १८७२-७६ ई०में।

२. महाशय (A, B Keith)ने आक्सफोर्डसे १९०९ ई० में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है।

ऋग्वेदकी उपनिषदें

मुक्तिकोपनिषद्ने जिन १०८ उपनिषदों वहुत महत्व[1] दिया हैं। उनमेंसे दसका सम्बन्ध ऋग्वेदसे ठहराया है — (१) ऐतरेय, (२) कौषीतकि, (३) नादबिन्दु, (४) आत्मप्रबोध, (५) निर्वाण, (६) मुद्गल, (७) अक्षमालिका (८) त्रिपुर, (९) सौभाग्य, (१०) बह्वृच। इनमेंसे भी दो अपनी प्रतिपाद्य विषय-महनीयताके कारण नितान्त लोक-प्रिय और प्रामाणिक है — ऐतरेय और कौषीतकि।

१. ऐतरेयोपनिषद्[2] — तीन अध्यायोंका ग्रन्थ है। प्रथम अध्यायके प्रथम खण्डमें = सृष्टि निरूपण, द्वितीय खण्डमें = इन्द्रिय-गोलक-निर्देश, तृतीयमें = अन्न ग्राहक प्राणका निरूपण है। द्वितीय अध्यायमें = मनुष्य-शरीरकी उत्पत्ति और तृतीयमें = उपास्य देवका स्वरूप-निर्णय किया गया है।

२. कौषीतकि उपनिषद्[3] में — चार अध्याय हैं। प्रथमाध्यायका विषय है = पर्यङ्क – विद्या[4], द्वितीयका = प्राणोपासना,

---

१. सर्वोपनिषदां मध्ये, सारमष्टोत्तर शतम्।
सकृच्छ्रवणमात्रेण, सर्वाघौघनिकृन्तनम्॥ (मु० उ० १।४४)

२. सायण-भाष्य और शाङ्करादि भाष्यों-सहित मुद्रित है।

३. कौषीतकि उपनिषद् शांखायन आरण्यकके अन्तिम भागके रूपमें पूनाने मुद्रित है। आचार्य शङ्कर और सायणके भाष्य इस पर हैं।

४. प्राणरूपी पर्यङ्क सम्बन्धी विद्या।

आध्यात्मिक अग्निहोत्र और विविध उपासनाएँ। चतुर्थाध्यायमें अजातशत्रु तथा गार्ग्यका संवाद सुन्दर ढंगसे दिया गया है।

एक और—ऋग्वेदकी बाष्कल उपनिषद् भी उपलब्ध है। इसमें एक उपाख्यान अतीव मनोरञ्जक है—देवराज इन्द्र मेषके रूपमें आकर कण्व-पुत्र मेधातिथिको स्वर्गमें ले गया। मेधातिथि मार्गमें बोल नहीं सका; स्वर्गमें पहुँचकर कहने लगा—'तू कौन?' उत्तर मिला—'मैं हूँ विश्वेश्वर देवराज इन्द्र'। 'मुझे यहाँ क्यों ले आया?'—इस प्रश्नका इन्द्रने उत्तर दिया—'घोर अन्धकारसे मैंने पार किया तुम्हें; मुझे धन्यवाद दो'। बस दोनों शान्त हो गये।

ऋग्वेदके श्रौतसूत्र

ऋग्वेदके दो श्रौतसूत्र प्रसिद्ध हैं—आश्वलायन श्रौतसूत्र और शांखायन श्रौतसूत्र।

१. आश्वलायन श्रौतसूत्र—बारह अध्यायोंमें विभक्त है। ऐतरेय ब्राह्मणसे सम्बद्ध है। इसके रचयिता महर्षि आश्वलायन, कौशिक विश्वामित्रके पुत्र थे। आश्वलायन-श्रौतसूत्र पर ग्यारह भाष्यकारोंका पता चला है—

(१) नारायण गर्ग, (२) देवत्रात, (३) विद्याधर, (४) कल्याणश्री, (५) दयाशङ्कर, (६) मण्डन भट्ट, (७) मथुरानाथ शुक्ल, (८) महादेव, (९) पुल्लमट्ट-सुत, (१०) षड्गुरु-शिष्य,

(११) सिद्धान्ती। इस श्रौतसूत्रका प्रकाशन राजेन्द्रलाल मित्रने १८६४-७४ ई० में पूनासे किया है।

२. **शांखायन श्रौतसूत्रमें**—अड़तालीस अध्याय हैं। शांखायन ब्राह्मणसे इसका घनिष्ट सम्पर्क है। यज्ञ-पद्धतिका निरूपण इसमें बहुत स्पष्ट हैं। विष्णु और नारायणादि कई पण्डितोंके भाष्योंसे यह सुशोभित है। सर्व-प्रथम इसका सम्पादन हिलेब्राण्ड्ट् (A. Hillebrandt)ने किया था।

ऋग्वेदके गृह्यसूत्र

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रोंमें भी आश्वलायन और शाखायन ही उल्लेखनीय हैं। इन गृह्य सूत्रोंमें गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ा, उपनयन, श्राद्धादिका वर्णन अच्छा है। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें केवल चार अध्याय हैं और शाखायन गृह्यमें छः। शांखायन पर प्रसिद्ध भाष्य हैं—सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैलादिके। रामचन्द्र नामक एक विद्वानने नैमिषारण्यमें रहकर इस पर भाष्य लिखा है। पहले स्टेन्ज़्लर (A. F. Stanzler)ने दो भागोंमें इसका प्रकाशन किया था।

ऋक्-प्रातिशाख्य

ऋक्-प्रातिशाख्य सूत्र शौनकके बनाये कहे जाते हैं। यह शौनक आश्वलायनके गुरु थे। इस प्रातिशाख्यमें = ३ काण्ड हैं। प्रत्येक काण्डमें = ६ पटल तथा तीनों काण्डोंमें १०३ कण्डिकाएँ

हैं। प्रथम-प्रथम विष्णुपुत्रने इस पर भाष्य रचा था। तदनन्तर उव्वटने उसीका संस्करण करके नया भाष्य बना लिया। प्रातिशाख्य सूत्रोंकी छायासे बना हुआ उपलेख नामक संक्षिप्त ग्रन्थ भी उपलब्ध है। कुछ लोग इसे प्रातिशाख्य सूत्र-परिशिष्ट कहते हैं। ऋक्-प्रातिशाख्यका सम्पादन[1] पहले मैक्समूलरने किया था।

ऋग्-अनुक्रमणी

अनुक्रमणीसे मन्त्रोंके छन्द, देवता, ऋषि, विनियोगादि जाने जाते हैं। एक ऋग् अनुवाकानुक्रमणी शौनक-रचित और दूसरी कात्यायन-प्रणीत सर्वानुक्रमणी उपलब्ध है। षड्गुरु-शिष्यने उनपर सम्वत् १२३४में विस्तृत टीका लिखी है। टीकाकार अपना वास्तविक नाम निर्देश कहीं नहीं करता। हाँ! अपने श्रद्धेय छ गुरुओंका नाम अवश्य जप लेता है — (१)विनायक, (२)त्रिशूलान्त, (३) गोविन्द, (४) सूर्य, (५) व्यास और (६) शिवयोगी। हमारे प्रातःस्मरणीय प्राचीन लेखक अपने नामको कुछ भी महत्व

---

१ ऋक्-प्रातिशाख्य – क — Germanमें टिप्पणीके साथ हिन्दी लिपिमें १८५६–६९में छपा है।
ख — रेग्नियर (Regnier) द्वारा १८५७–५९ ई० में ३ भागोंमें।
ग — युगलकिशोर शर्मा-सम्पादित हिन्दी अनुवाद १९०३ ई० में बनारससे निकला है।
घ — पशुपति नाथ और चित्तहरण चक्रवर्ती द्वारा आठ खण्डोंमें है।

नहीं देते थे; कितना ही विस्तृत और सारगर्भित साहित्य क्यों न प्रदान कर रहे हों। परन्तु आज-कल तो किसी ग्रन्थको छूकर ही 'महाधुरन्धर सार्वभौमादि अपनी उपाधियोंसे तथा अपने बापदादोंकी गुण-गरिमासे ग्रन्थ-कलेवर बृहत्तम बना देते हैं। ऋग्-अनुक्रमणीका ऑक्सफोर्ड-संस्करण मेरे सामने है। षड्गुरु-शिष्य रचना वेदार्थ-दीपिका तथा वृत्ति साथ है। मुखपृष्ठ पर लिखा हुआ है— 'Edited by A. A. Macdonell, M. A. Oxford 1886'। कात्यायन-प्रणीत सर्वानुक्रमणी शाकल संहिताके ऋषि, देवत, छन्दादि विस्तृत गद्यमें बताती है। शौनक अपनी पद्यात्मक अनुवाकानुक्रमणीमें मण्डल, सूक्त, अध्याय, वर्ग, मन्त्रादिका योगफल बताते चले गये हैं। ११ श्लोकोंमें छन्द-संख्या और ४९ श्लोकोंमें शेष समस्त वक्तव्य समाप्त कर दिया है। कात्यायनने आरम्भमें "श्री गणेशाय नमः" ही लिखा है परन्तु शौन महर्षि पूरा ऐतिहासिक मंगल कर गये हैं—

"सर्वं कर्म सफलं यत्र तुष्टेऽतुष्टे न किञ्चित्तमहं नमामि।
विनायकं गिरिराजेन्द्रपुत्रीमहेश्वरप्रियसूनुं घृणाब्धिम्॥"

बृहद्देवता

महाकवि शौनक-रचित बृहद्देवता ग्रन्थमें ऋग्वेदीय प्रत्येक ऋषि और देवता का वर्णन पौराणिक आख्यानोंके सहारे किया गया है। शौनकने शाकल—शैशिरीय शाखामें अपने ग्रन्थोंका सम्बन्ध स्वयं कह दिया है—

ऋग्वेदे शैशिरीयायां, संहितायां यथाक्रमम् ।
प्रमाणमनुवाकानां, सूक्तैः शृणुत शाकलाः ॥
(अनुवाकानु॰ ९)

इसी प्रकार ऋग्वेदसे सम्बन्ध रखनेवाले ऋग्विधान, बृहद् परिशिष्ट आदि ग्रन्थ हैं। परन्तु इनके अंगके साहित्यका विचार समयान्तर पर छोड़ते हुए ऋग्वेदका विषय यहीं समाप्त करते हैं। स्थूल रूपसे ऋग्वेदकी यही रूप-रेखा है।

---

२ — यजुर्वेद

यजुर्वेदका महत्त्व

पुरातत्त्व-अन्वेषकोंकी दृष्टिमें ऋग्वेदका जितना महत्त्व है। उससे कम महत्त्व यजुर्वेदका कर्मठोंकी दृष्टिमें नहीं। क्योंकि जिस ब्रह्माके पूर्व मुखसे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ, उसीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदका। इतना ही नहीं, अपितु व्याससे पूर्व चारों वेदोंका जो एक ही वेद था; उसका नाम था 'यजुर्वेद'। वायु पुराणमें लिखा है :—

"एक एवासीद्यजुर्वेदः, स्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिं, स्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु, ऋग्भिर्होत्रमेव च ।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे, ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे, वेदेनाथर्वणे न तु ।
ततः स ऋचमुद्धृत्य, ऋग्वेदं समकल्पयत ॥"

अर्थात् पहले एक ही यजुर्वेद था जिसके चार भेद किये गये। उस समयसे होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा — इन चारों ऋत्विजोंके कृत्य-प्रकाशक अंशोंको पृथक् पृथक् कर दिया गया। ऋचाओंको पृथक् निकालकर ऋग्वेदके रूपमें एकत्र कर दिया गया; जिसका सम्बन्ध होतासे है। उद्गाताके सामोंको अलग करके सामवेद नाम रख दिया गया और ब्रह्मा नामक ऋत्विक् के भागको भिन्न कर अथर्ववेदका स्वरूप दे दिया गया। शेष रह गया अध्वर्युका कृत्य। आजकलके यजुर्वेदमें अध्वर्युके ही कृत्य हैं; अत: इस यजुर्वेदकी 'आध्वर्यव' भी एक समाख्या है। यज्ञमें भी देखा जाता है कि अध्वर्यु इडा-भक्षणादि-अवसरों पर होता, उद्गाता, ब्रह्मादिके भाग देकर शेष अपना भाग खा लेता है। अध्वर्यु ही अनुष्ठानांशमें प्रधान ऋत्विक् है। फिर इस अध्वर्युके कर्तव्य-ज्ञानका एकमात्र आधार यजुर्वेद नहीं; अपि तु अधिक ही है। महत्त्वमें किसीसे कम क्यों होगा?

यजुर्वेदके भेद

यजुर्वेद दो प्रकारका है — (१) शुक्ल और (२) कृष्ण। यद्यपि जाबाल संहितामें

'शुक्ल', 'कृष्ण' नाम-निमित्त पूर्वोक्त दो ब्रह्मा और आदित्यके सम्प्रदायोंका ही नाम कृष्ण और शुक्ल कहा गया है —

ब्रह्मणः सम्प्रदायोऽयं, व्याससन्दर्शितोऽभवत् ।
विभक्तस्यैव वेदस्य, सम्प्रदायो द्विधा मतः ॥
अयातयामसंज्ञोऽयं, कृत्स्नकर्मप्रकाशकः ।
यावद्ब्रह्मप्रकाशको, रविरूपश्च यो मतः ॥
ब्रह्मणः सम्प्रदायस्तु, मिश्रत्वान्न तथा मतः ।

अर्थात् ब्रह्म—सम्प्रदायकी मन्त्र ब्राह्मण मिश्रित होनेके कारण यातयाम=तामस वा कृष्ण संज्ञा है । और आदित्य-सम्प्रदाय रवि जैसा मन्त्र ब्राह्मण दोनोंका स्पष्ट प्रकाशक होनेसे अयातयाम= सात्त्विक अथवा शुक्ल संज्ञावाला है ।

तथापि यजुर्वेदमें और भी निमित्त होनेके कारण यह शुक्ल कृष्ण व्यवहार यजुर्वेदमें ही रह गया । दूसरे निमित्त ये हैं :—

प्रवर्तितः खण्डशस्तै, न सम्यग्बुध्यते नृभिः ।
आध्वर्यवं क्वचिद्धौत्रं, क्वचिदित्यव्यवस्थया ॥
बुद्धिमालिन्यहेतुत्वाद्, यजुः कृष्णमीरितम् ।
याज्ञवल्क्यस्ततः सूर्य—माराध्यास्मादधीतवान् ॥
व्यवस्थित प्रकरणं, यजुः शुक्लं तदीर्यते ।
पौराणकीं कथामेतां, वेद व्याख्यान आदरात् ॥
(कण्वसंहिता भाष्योपक्रमः)

अर्थात् कण्व संहिताके प्राक्कथन भाष्यमें सायणाचार्य शुक्ल कृष्णके पुराण कथित निमित्तको आदर दे रहे हैं । पुराण-कथित निमित्त यह है—होता और अध्वर्यु आदिके कृत्योंकी अव्यवस्था

वा मिश्रण होनेके कारण यजुः की एक शाखाको 'कृष्ण' और व्यामिश्र रूपसे (मन्त्र ब्राह्मण पृथक् पृथक् होनेसे) याज्ञवल्क्य द्वारा प्राप्त दूसरी शाखाको 'शुक्र' नाम मिला।

वैयासिक चरण व्यूह-भाष्यकरने तो और ही कारण बनाया है—"दत्तसंगिर्त शुक्रियं मध्याह्ने शुक्ररूपेण सूर्येण दत्तं तच्छुक्ययजुः प्रख्यातमित्यर्थः। वेदोपक्रमणे चतुर्दशीयुक्तपूर्णिमा-ग्रहणात् शुक्रयजुः", तैत्तिरीयके—वेदोपक्रमणे औदयिक-पर्वग्रहणादर्थात्कृष्णप्रतिपद्विद्ध-पौर्णमासीग्रहणात् कृष्णयजुरिति वा" अर्थात् याज्ञवल्क्यको शुक्लवर्णवाले मध्याह्नके सूर्यने उपदेश किया अत. वाजसनेय स्वाध्यायका शुक्र नाम पड़ा। अथवा वाजसनेयी शाखावाले वेदाध्ययनका आरम्भ चतुर्दशीयुक्तपूर्णिमामें अर्थात् शुक्र पक्षमें किया करते हैं; अतः वाजसनेयी संहिताका 'शुक्र यजुः' नाम पड़ा और तैत्तिरीय शाखावाले कृष्ण प्रतिपदासे मिली हुई पूर्णिमामें अध्ययन आरम्भ करते हैं अतः तैत्तिरीय संहिताकी सज्ञा कृष्ण यजुः हुई।

शतपथ तो आदित्यसे प्राप्त होनेके कारण ही 'शुक्ल' नाम रखना प्रतीत होता है—"आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते" (शत० १४।९।४३३)

कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाएँ

चरणव्यूहके मतानुसार कृष्ण यजुर्वेदकी ८६ शाखाएँ होती हैं। महाभाष्यमें तो पूरे यजुर्वेदकी १०१ शाखाएँ और मुक्तिकोप

निषद्में* १०९ कही गई हैं। इस समय तो यजुर्वेदकी केवल चार शाखाएँ उपलब्ध हैं—(१) तैत्तिरीय, (२) कठ, (३) मैत्रायणी और (४) कपिष्ठल कठ शाखा।

(१) तैत्तिरीय शाखा

तैत्तिरीय संहिता—इस संहिताका प्रचार गोदावरी निकटवर्ती दक्षिणी प्रान्तमें है। काण्ड, प्रपाठक और अनुवाकोंमें विभक्त है। काण्ड = ७ प्रपाठक = ४४ और अनुवाक = ६३१ हैं। मन्त्र संख्या चरणव्यूहके अनुसार = १०१८ है। इसका विषय विभाग लौगाक्षि स्मृतिमें इस प्रकार है —

"तानि काण्डानि वेदस्य, प्रवदामि च स्फुटम्।
पौरोडाशो याजमानं, हौतारो हौत्रमेव च॥
पितृमेधश्च कथितो, ब्राह्मणेन च तत्परम्।
तथवानुब्राह्मणेन, प्राजापत्यानि चोचिरे॥
तत्काण्डीर्षविशेषज्ञा, वसिष्ठाद्या महर्षयः।
तद्विशेष प्रकाशार्थं, सम्यगेतद्विविच्यते॥

* "नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज" (मु० उ० १।१२)। यदि मुक्तिकोपनिषद्-उक्त "एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता"—इस नियमसे शाखा-संख्या मुक्तिकोपनिषद्में खोजें तो केवल ५१ ही होती है। क्योंकि कृष्ण यजुर्वेदकी उपनिषद्-संख्या ३२ और शुक्ल यजुर्वेद-उपनिषद्-संख्या १९ बताई है। ३२+१९=५१

अष्टकादि विभाग भी इसमें है। कहीं कहीं ७ अष्टक, ४४ प्रश्न, ६५१ अनुवाक २१९८ मन्त्र और ११०२९६ अक्षर भी लिखे गये हैं।

पौराडाशा इष्टेत्याद्या, अनुवाकास्त्रयोदश ।
तद्ब्राह्मणं तृतीयस्यां, प्रत्युष्टं पाठकद्वयम् ॥
एवं चतुश्चत्वारिंशं, काण्डानां तैत्तिरीयके ।
महाशाखाविशेषेऽस्मिन्, कथिता ब्रह्मवादिभिः ॥"

वसिष्ठादि महर्षियोंकी परम्पराका यह विषय-विभाग अति स्पष्ट है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण—इसमें तीन काण्ड[1] हैं । तीनों काण्डोंमें = २८ प्रपाठक हैं । प्रथम काण्डमें = ७८ अनुवाक और द्वितीयमें = ९६ तथा तृतीयमें = १६४ अनुवाक हैं । सबका जोड़ = ३३८ है । इस पर सायण तथा भट्टभास्करके भाष्य हैं । कलकत्ता और पूनासे छप चुका है ।

तैत्तिरीय आरण्यक—१० प्रपाठकोंका यह ग्रन्थ है । इनों प्रपाठकोंमें क्रमशः ३२, २०, २१, ४२, १२, १२, १२, ८, १०, ६४ अनुवाक हैं । सब अनुवाकोंकी संख्या = २३३ है । दशम प्रपाठकमें परिशिष्ट रूपसे ८० अनुवाक और हैं । सायणने इसे खिल प्रकरण कहा है । नारायणोपनिषत् भी यही है ।

तैत्तिरीय उपनिषद्—तैत्तिरीय आरण्यकके सप्तम, अष्टम, नवम, प्रपाठकोंको तैत्तिरीय उपनिषद् और दशम प्रपाठकके

१. तैत्तिरीय ब्राह्मणमें अष्टक, अध्याय, अनुवाकोंका भी विभाग हैं । परन्तु भाष्यानुसार काण्डादि-विभाग ही है ।

परिशिष्टको नारायण उपनिषद् कहते हैं। सायण शङ्कर आदि आचार्योंके भाष्योंसे तैत्तिरीय उपनिषद् अलङ्कृत है। इसके तीन भाग हैं—(१) शिक्षावल्ली, (२) आनन्दवल्ली, (३) भृगुवल्ली। प्रथम वल्लीमें स्वर-शिक्षा, सत्यंवद, धर्मंचर आदि और शेष दो में = ब्रह्मविद्याका मर्मस्पर्शी उपदेश है।

तैत्तिरीय श्रौतसूत्र—तैत्तिरीय शाखासे सम्बन्ध रखनेवाले पाँच श्रौतसूत्र हैं—(१) बौधायनीय[२] (२) आपस्तम्बीय[३] (३) हिरण्यकेशीय[४], (४) भारद्वाजीय, (५) वैखानस। सभी मुद्रित हैं। इन पर भाष्य और वृत्ति ग्रन्थोंकी कमी नहीं है।

तैत्तिरीय-गृह्यसूत्र—सभी श्रौत सूत्रकारोंने ही गृह्यसूत्र रचे हैं। जिन पर कर्काचार्य आदि महापण्डितोंके भाष्य हैं।

(२) काठक शाखा

"ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च" (व्या० म० भा ४।३।१०१)—इस पतञ्जलि महर्षिके लेखसे

कठ संहिता[५] प्रतीत होता है कि किसी समय कठ शाखाका प्रचार भारतके कोने कोनेमें था। उत्तर-प्रान्तोंसे इसका सम्बन्ध अभी भी बना हुआ है। कठ ब्राह्मण

२. १९०४-२० में कैलेण्ड (W. Caland) द्वारा प्रकाशित।

३. दो भागोंमें गार्वे (R. Garbe) ने १८८१-१९०२ में प्रकाशित किया है।

४. गोपीनाथ और महादेवका संस्करण।

५. काठक संहिता सबसे पहले १९०१ ई० में श्राडर (L. V. Schroeder) ने प्रकाशित की अब स्वाध्याय मण्डलसे भी निकली है।

कश्मीरमें ही पाये जाते हैं। महर्षि वैशम्पायनके शिष्य महर्षि कठ द्वारा — प्रवर्तित यह कठ संहिता है। तैत्तिरीय संहिताकी भाँति इसमें भी मन्त्र और ब्राह्मण मिश्रित है। काठक-संहितामें पाँच ग्रन्थ (काण्ड) हैं। १ — इठिमिका*, २ — मध्यमिका, ३ — ओरिमिका, ४ — याज्या अनुवाक्याकाण्ड, ५ — अश्व-मेधीय-अनुवचन।

१. इठिमिका — नामक काण्डमें = १८ स्थानक हैं। जिनके क्रमशः ये नाम हैं — पुरोडाश, अध्वर, ज्योतिरिक, ग्रह, याजमान, अग्निहोत्र ब्राह्मण, आलोभी, दिशस्स्थानक, उत्सीदन, अग्निविष्णु मारुत, पयस्स्थानक, पशुबन्ध, वाजपेय, श्रीराजसूय, अग्निवीशका, ध्रुवक्षिति, चमा।

२. मध्यमिका — नामक ग्रथमें = १२ स्थानक हैं — सावित्र, अपेतवीत, पञ्चचूड, स्वर्ग, दीक्षित, साक्षाति, इषु, धिष्ण्य, याचस्पति, आयुष्य, दीर्घजिह्वा और पात्नीवत।

३. ओरिमिका में = १० स्थानक हैं — पुरोडाश-ब्राह्मण, यजमान-ब्राह्मण, सत्र, एकादशिनी, प्रायश्चित्ति, चातुर्मास्य, सत्र, सौत्रायणी, पटकान्द, हिरण्यगर्भ।

४. याज्यानुवाक्या — तो ओरिमिकाके ही अन्तर्गत है।

---

* इठिमिका आदि नाम उत्तर पदादियोंकी भाषामें मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं।

९. अश्वमेधीयानुवचन—में १३ अनुवचन हैं—पन्थानुवचन, गणानुवचन, मेघानुवचन, मितानुवचन, जीमूतानुवचन, इन्द्रानुवचन, पेत्वानुवचन, रोहितानुवचन, सोमानुवचन, नमस्कारवचन, अलिवन्दानुवचन, शादानुवचन। सब स्थानक = ४०, अनुवचन = १३, अनुवाक = ४३, मन्त्र = ३०९३, मन्त्र और ब्राह्मण मिलकर १८००० हैं॥

कठ-ब्राह्मण— इसका उद्धरण तो कई ग्रन्थोंमें आता है परन्तु अभी तक पूर्ण उपलब्ध नहीं हुआ। आरण्यककी भी यही दुर्दशा है।

कठउपनिषद्—कठ उपनिषद् अपने आरण्यकादि परिवारके तितर-बितर हो जाने पर भी केवल उपलब्ध ही नहीं अपितु अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायमें = तीन वल्लियां हैं। छहों वल्लियोंमें मन्त्र क्रमशः हैं = २९, २४, १७, १९, १५, १८ सब = ११८ हैं।

इसी उपनिषदमें यम और नचिकेताका प्रसिद्ध संवाद है। इसपर शङ्करादि आचार्योंके भाष्य हैं।

काठक सूत्र—श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र* दोनों लौगाक्षि-प्रणीत हैं। देवपाल, ब्रह्मबलादि-कृत भाष्य श्रीनगर (काश्मीर)

* काठक सूत्र (W. Caland) द्वारा मुद्रित है।

तथा लाहोरसे मुद्रित हो चुके हैं। इनके सिवा एक लौगाक्षि-स्मृति भी उक्त शाखासे सम्बन्ध रखती है। जिसमें ४००० श्लोक हैं।

(३) मैत्रायणी शाखा

मैत्रायणी संहिता—हरिवंशके चौंतीसवे अध्यायमें लिखा है—

दिवोदासस्य दायादो, ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप।
मैत्रायणी ततः शाखा, मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः॥"

अर्थात् मित्रयु ऋषि—प्रवर्तित संहिता मैत्रायणी है। तैत्तिरीय संहिताकी अपेक्षा इसमें प्रकरणोंका संगठन अच्छा है। महाराष्ट्र और गुजरातमें इसका प्रचार पहले भी महार्णव बताता है—

"मयूराद्रिं समारभ्य, यावद् गुर्जरदेशतः।
व्याप्य वायव्यदेशं वै, शाखा मैत्रायणी स्थिता॥"

मयूर पर्वत=नासिक मण्डलमें मुल्हेर क्षेत्रके समीप है। इस संहितामें भी ब्राह्मण भाग मिला हुआ है। चार काण्डोंमें यह विभक्त है।

प्रथम काण्डमें—ग्यारह प्रपाठक है। जिनमें विषय हैं क्रमश:—दर्शपूर्णमास, अध्वर, ग्रह, यजमान-ब्राह्मण, अग्नि उपस्थान, आधान, पुनराधान, अग्निहोत्र ब्राह्मण, चतुर्होता, चातुर्मास्य, वाजपेय।

द्वितीय काण्डमें—१३ प्रपाठक हैं। जिनमें १ से ४ तक काम्य इष्टियाँ, पाँचवेंमें=काम्यपशुयाग, षष्ठमें=राजसूय और ७ से १३ तक अग्निचयन कर्म है।

तृतीय काण्डमें—१६ प्रपाठक हैं। जिनमें १ से ५ तक अग्निचयन–ब्राह्मण हैं। ६ और सातमें=अध्वरादि-विधि, ८ से ११ तक क्रमशः — आसुर, सङ्क्रान्त, पात्नीवत, सौत्रामणी हैं। १२ से १६ तक=अश्वमेध वर्णित है।

चतुर्थ काण्डमें—१४ प्रपाठक हैं। प्रथममें=पुरोडाश-ब्राह्मण, द्वितीयमें=गोनामिक, तृतीय और चतुर्थमें=राजसूय-ब्राह्मण, ५ से ८ तक=अध्वरादि–विधि, नवममें=प्रवर्ग्य तथा शेष—पाँच प्रपाठकोंमें=याज्यानुवाक्या हैं। इस संहिताके कई मुद्रण निकले हैं।

मैत्रायणीय आरण्यक—संहिताके अन्तमें ही मैत्रायणीय आरण्यक अथवा उपनिषद् मुद्रित है। उसके ७ प्रपाठक हैं। जिनमें क्रमशः ४, ७, ५, ६, २, ३८, ११ खण्ड हैं।

मैत्रायणी-सूत्र—इस शाखासे सम्बन्ध रखनेवाले मानव श्रौत सूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र प्रसिद्ध हैं। मनुस्मृति और मानव गृह्यका परस्पर घनिष्ट सम्पर्क है। वाराह-गृह्यमें बहुतसे इस शाखाके ग्रन्थोंका निर्देश है।

(४) कपिष्ठल कठ शाखा

इन शाखाकी संहिता सन् १९३२ ई०में लाहौरसे प्रकाशित हो गई है। इसमें आठ अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टक आठ अध्यायोंमें विभक्त है।

शुक्ल यजुर्वेदकी शाखाएँ

"शुक्लस्य यजुषः पञ्च—दश शाखाः ताः स्मृताः।" — इस कात्यायन मुनिके वचनसे ज्ञात होता है कि शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाएँ थीं। परन्तु इस समय दो ही शाखाएँ उपलब्ध हैं :— (१) माध्यन्दिनी और (२) कण्व।

(१) माध्यन्दिनी शाखा

भगवान् सूर्यने दिनके मध्यभागमें इसका उपदेश किया था अतः इसका नाम माध्यन्दिनी पड़ा।

माध्यन्दिनी संहिता

वाजसनेयी संहिता भी इसे कहते हैं। क्योंकि वाजसनिके पुत्र याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यसे प्राप्त किया था। इस संहिताके ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक, १९७५ काण्डकाएँ १९७६ (मतान्तरमें १९७५) मन्त्र, ८८८७५ अक्षर और २९६२५ शब्द हैं। प्रथमके पचीस अध्यायोंमें मन्त्र-संग्रह है। अन्तके पंद्रह अध्याय

खिल प्रकरणके नामसे प्रसिद्ध हैं। सोलहवें अध्यायमें शतरुद्री, इकतीसवेंमें पुरुषसूक्त और चालीसवेंमें ईशावास्योपनिषद् है। वाजसनेयी संहिता पर उव्वट, माधव, आनन्दभट्ट, अनन्तदेव और महीधरके प्रख्यात भाष्य हैं। महीधरने उव्वट और माधवके भाष्य देखकर अपना भाष्य बनाना आरम्भमें लिखा है।

"प्रणम्य लक्ष्मीं नृहरिं गणेशं,
भाष्यं विलोक्यौव्वटमाधवीयम्।
यजुर्मनूनां विलिखामि चार्थं,
परोपकाराय निजेक्षणाय ॥"

माध्यन्दिन-शतपथ ब्राह्मण *

अति प्रसिद्ध शतपथ ब्राह्मण दो प्रकारका है — १. माध्यन्दिन शाखा सम्बन्धी और २. कण्व शाखा सम्बन्धी। पहलेका नाम माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण है। इसके नामसे ही व्यक्त है कि शत=१०० पथ=अध्याय वाला यह ग्रन्थ है। काण्ड=१४, प्रपाठक=६८, श्लोक-संख्या २४००० अक्षर-संख्या ७६८००० है। इसमें ऋचाएँ=१२०००, यजुः=८००० और ४००० साम सङ्गृहीत हैं। महाभारतके कथानकों जैसे इसमें अनेक कथानक हैं; जिनके सहारे संहिताकी व्याख्या की गई है। सीताराम आदि ऐतिहासिक नाम भी इसमें आते हैं।

* पहला संस्करण १८५५ ई० में बर्लिनसे वेबरने निकाला था।

माध्यन्दिन शतपथ-विवरण

काण्ड-सङ्ख्या	काण्ड-संज्ञा	अध्याय	प्रपाठक	ब्राह्मण	कण्डिकाएँ
१	हविर्यज्ञ	९	७	३७	८३७
२	एकपादिका	६	५	२५	५४९
३	अध्वर	९	७	३७	८५९
४	ग्रहनाम	६	५	३९	६४८
५	सव	५	४	२५	४७१
६	उखासम्भरण	८	५	२७	५३०
७	हस्तिघट	५	४	१२	३९८
८	चिति	७	४	२७	४३७
९	सञ्चिति	५	४	१५	४०२
१०	अग्निरहस्य	६	४	३१	३६९
११	अष्टाध्यायी	८	४	४२	४३७
१२	मध्यम	९	४	२९	४५९
१३	अश्वमेध	८	४	४३	४३२
१४	बृहदारण्यक	९	७	५०	७९६
योग=१४	१४	१००	६८	४३८	७६२४

बृहदारण्यक—उक्त शतपथका चौदहवाँ काण्ड बृहदारण्यक कहलाता है। इसके आरम्भिक तीन अध्यायोंमें प्रवर्ग्य विधिकी चर्चा है तथा संहिताके कथांश उद्धृत हैं। शेष छः अध्यायोंमें बृहदारण्यकोपनिषद् है।

बृहदारण्यक उपनिषद्—बृहदारण्यकके अन्तिम छः अध्यायोंको बृहदारण्यक उपनिषद् कहते हैं। इस उपनिषद् पर

दो भाष्य मुद्रित हैं — एक द्विवेद गङ्ग संज्ञक गुजरातके नागर ब्राह्मणका जर्मन – मुद्रित ग्रन्थमें छपा है और दूसरा वासुदेव भगवत्पाद-रचित वेंकटेश्वर कल्याण मुद्रणालय बम्बईसे मुद्रित हुआ है । इस पर शङ्कराचार्यादिके भाष्य नहीं हैं; अपि तु कण्व शतपथ ब्राह्मण — अन्तर्गत बृहदारण्यकोपनिषत् पर हैं । इसी प्रकार इस संहिताकी मन्त्रोपनिषद् (ईशावास्य) पर भर्तृप्रपंचादिकी व्याख्याएँ हैं; शङ्कराचार्यादिकी नहीं ।

माध्यन्दिन-श्रौत सूत्र — शुक्ल यजुर्वेदके श्रौतसूत्रोंमें कात्यायन मुनि-प्रणीत श्रौतसूत्र ही सबसे प्रसिद्ध है । इसमें = २६ अध्याय हैं । आरम्भके अठारह अध्यायोंमें उसी क्रिया-कलाप पर विचार किया गया है; जिसका निरूपण शतपथके प्राथमिक नौ काण्डोंमें हुआ है । शेष अध्यायोंमें क्रमशः-सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, पितृमेध, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और प्रवर्ग पर विचार किया गया है । इस सूत्र ग्रन्थके अनेक भाष्यकार और वृत्तिकार हुए हैं । उनमें — यशोगोपी, पितृभूति कर्क भर्तृयज्ञ, श्री अनन्त, गङ्गाधर, गर्ग पद्मनाभ, मिश्र अग्निहोत्री, याज्ञिकदेव, हरिहर महादेव और विद्याधरके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

माध्यन्दिन—गृह्य सूत्र — कई गृह्यसूत्र ग्रन्थोंमें पारस्कर-रचित कातीय गृह्यसूत्र ही प्रामाणिक है । जिसका अध्ययन अध्यापन याज्ञिक विद्वानोंमें विशेषरूपसे पाया जाता है । इसमें काण्ड = ३ हैं । इसकी पद्धति वासुदेव पण्डितकी लिखी हुई है । सूत्रोंपर टीका जयरामने भी की है । शङ्कर गणपति (रामकृष्ण) की टीका तो

पाण्डित्य-पूर्ण है। याज्ञवल्क्य स्मृति आदि अनेक धर्म-ग्रन्थ इस गृह्यसूत्रके अनुयायी हैं।

शु० यजुर्वेद—प्रातिशाख्य — शुक्ल यजुर्वेदके प्रातिशाख्यसूत्र और उनकी अनुक्रमणी कात्यायन मुनि-प्रणीत है। इस प्रातिशाख्यके आठ अध्याय हैं। प्रथममें = संज्ञा और परिभाषा, द्वितीयमें = स्वर और उच्चारण-प्रणाली, तृतीय चतुर्थ और पंचममें = संस्कार, षष्ठमें = क्रियापदार्थका निर्णय तथा शेष अध्यायोंमें = क्रम नियम दिए गये हैं। उव्वटने इस पर टीका रची है। अनुक्रमणीमें = पाँच अध्याय हैं।

(२) कण्व शाखा

कण्व महर्षि द्वारा प्रचारित शाखाका नाम कण्व शाखा है।

कण्व संहिता

यह कण्व महर्षि ऋग्वेदके मन्त्रद्रष्टा कण्वसे भिन्न, बोधायनके पुत्र और याज्ञवल्क्यके शिष्य हैं। अपनी संहितामें इन्होंने गुरुके पाठका कहीं-कहीं अनुसरण नहीं किया है। जैसे— माध्यंदिनशाखी पुरुषका उच्चारण 'पुरुख' करते हैं परन्तु कण्व वैसा नहीं करते; अपि तु ऋग्वेदियों जैसा ही उच्चारण करते हैं। "एष वः कुरवो राजा एष वः पाञ्चाला राजा" (कण्व सं० ११।११)— इस श्रुतिका पाठ और-और संहिताओंमें भिन्न-भिन्न है। अतः प्रतीत होता है कि महर्षि कण्व कुरु पाञ्चाल देशके रहनेवाले थे। इस संहितामें सब ४० अध्याय हैं। जिनमें ३९ अध्याय अनेक प्रकारके कर्मोंका निरूपण करते हैं। अन्तिम अध्याय ब्रह्मविद्या प्रतिपादक ईशावास्योपनिषद् है।

कण्व संहिताके अध्यायादि

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	अध्याय	अनुवाक	मन्त्र
१	१०	५०	२१	७	१०६
२	७	६०	२२	८	७१
३	९	७६	२३	६	६०
४	१०	४९	२४	२१	४७
५	१०	५५	२५	१०	६७
६	८	५०	२६	८	४४
७	२२	४०	२७	१५	४५
८	२२	३२	२८	१२	१४
९	७	४६	२९	६	५०
१०	६	४३	३०	४	४६
११	१०	४७	३१	७	५१
१२	७	८५	३२	६	८४
१३	७	११६	३३	२	४६
१४	७	६५	३४	४	२२
१५	९	३५	३५	४	५५
१६	७	८५	३६	१	२४
१७	८	६४	३७	३	२०
१८	७	८६	३८	७	२७
१९	९	४३	३९	९	१२
२०	५	४६	४०	१	१८
२०	१८७	११७३	२०	१४१	९१३

काण्व-शतपथ ब्राह्मण

डॉक्टर कालैण्ड (W. caland) के मतानुसार इस शतपथमें १०४ अध्याय ४४६ ब्राह्मण और ५८६५ कण्डिकाएं हैं। इसके पहले, पाँचवें और चौदहवें काण्डके दो-दो भाग हैं। विश्व कोशकारने लिखा है कि अब तक इसके साढ़े तेरह काण्ड मिले हैं जिनमें अध्याय=८९ और ३६० ब्राह्मण तथा ४९६५ कण्डिकाएँ हैं। वस्तुत इसका विवरण यह है—

काण्व शतपथका काण्डादि विभाग

काण्डाङ्क	काण्ड—नाम	अध्याय	ब्राह्मण	कण्डिकाएँ
१	एकपात्काण्ड	६	२५	३७६
२	हविर्यज्ञ काण्ड	८	३२	५३२
३	उद्धरि काण्ड	२	२२	१२४
४	अध्वर काण्ड	९	३६	६४९
५	ग्रहनाम०	८	३८	९७४
६	वाजपेय०	२	७	७००
७	राजसूय०	५	१९	२८९
८	उपसम्मरण०	८	२७	५११
९	हस्तिघट०	५	१६	२५७
१०	चिति०	५	२०	२४३
११	साग्निचिति०	७	२०	४३७

१२	अग्निरहस्य	६	२८	२८६
१३	अष्टाध्यायी०	८	३१	२४१
१४	मध्यम०	९	२८	३९२
१५	अश्वमेध०	८	४४	३०८
१६	प्रवर्ग्य काण्ड	२	७	१९२
१७	बृहदारण्यक०	६	४७	२९९
१७	१७	१०४	४३५	६८०६

काण्व-आरण्यक — काण्व शतपथ ब्राह्मणके अन्तिम ६ अध्याय बृहदारण्यक या बृहदारण्यक उपनिषद कहे जाते हैं। यही वह उपनिषद् है जो कि भिन्न-भिन्न मतावलम्बि, आचार्योंका एक बड़ा अखाड़ा है। इसके ६ अध्यायोंमें क्रमशः — ६, ६, ९, ६, १५, ५ ब्राह्मण हैं। सब ४७ ब्राह्मण हैं। प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण कई खण्डों या कण्डिकाओंमें विभक्त है।

इस बृहदारण्यक पर सायण-भाष्य भी चौखम्बा (बनारस) से मुद्रित हो चुका है। इस शाखाके सूत्रादि उक्त हा है।

यजुर्वेदकी इस शाखाओंका कुछ मुद्रित अवशेष

शङ्खलिखित-सू. — आचार्य शङ्खलिखित द्वारा लिखा गया एक धर्मसूत्र है जिसे वाजसनेय शाखावाले भी पढ़ते हैं।

श्वेताश्वर शाखा — इस शाखाकी केवल मन्त्रोपनिषद् श्वेताश्वतर के नामसे प्रख्यात है। इस शाखाके शेष अङ्ग अज्ञान या अनुपलब्धिके गर्भमें हैं।

मानव शाखा — चरण व्यूहमें मैत्रायणी शाखाके छः भेदोंमें एक मानव शाखा भी बताई गई है। इसका मानव श्रौतसूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र अष्टावक्र भाष्य-सहित गायकवाड़ ओरिएन्टल सिरीजमें छप चुका है।

वाराह शाखा — इसका वाराह श्रौतसूत्र लाहौरसे मुद्रित हो चुका है। वाराह गृह्यसूत्र भी मिलता है।

वैखानस शाखा — इस का केवल वैखानस कल्प मिलता है।

आपस्तम्ब, बोधायन, सत्याषाढ, हिरण्यकेशी और भारद्वाज शाखाओंके भी कल्प देखे जाते हैं।

बाघूल — यह शाखा केरल देशमें प्रचलित थी। इसका भी कल्प सुलभ है।



३—सामवेद

"सामानि यो वेद स वेद तत्वम्" (बृहद्देवता ८।१३०) साम तो इसमका सर्वस्व ठहरा; तभी तो भगवान्के वभोक्तनाममें विशेष विभूति गिना गया— "वेदानां सामवेदोऽस्मि" (गीता १०।२०)।

कृष्ण और साम

है भी मुरलीका मधुर स्वर-लहरि-कायोंका एक मात्र रिकार्ड सामवेद। फिर यह एक अलौकिक

पुष्प भी है "सामवेद एव पुष्पम्" (छां० उ० ।३।३।२)। वनमालीको और चाहिये क्या ! पत्र पुष्प हो तो माँगा करता है। अत उपादेयताके विचारसे साम सबमें अधिक महत्व रखता है। और भी :—

ऋग् और साम

"ऋच: साम रसः" (छां० उ० १।१।२) अर्थात् ऋचाओंका रस है साम; सामके विना ऋचाएँ नीरस हैं। अधिक क्या ! पक्षि-स्वरोंमें भी सामकी मधुरताका स्वप्न देखती है साम-विरहिणी ऋचा — "उभौ वाचौ वदति सामगा इव" "उद्गातेव शकुने साम गायसि" (ऋ० २।४३।१,२) अपने प्रणयी सामके उपासकों से भी कितना प्यार ! ! ! उनकी रक्षाका भार अपने निजी सैनिकोंको सौंप रही है — "यूयमृषिमवथ सामविप्रम् (ऋ० ५,५४,१४) अर्थात् देवताओ ! मेरे साम मधु-मधुप विप्रवरोंकी रक्षामें तुम कोई कसर न उठा रक्खो। भारतीय पति-परायणा पत्नियाँ पति-रक्षाके लिए सूर्यादि महाग्रहोंको भी जहाँ-का तहाँ स्तब्ध कर चुकी हैं। उनका सनातन आदर्श यही सती ऋचा पत्नियाँ ही तो हैं। सुनिए पति-पत्नीका मधुर संवाद — "अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं . . . ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै" (अथ० १४।२।७१) अर्थात् साम कहता है — ऋचे ! मैं पति और तुम पत्नी; फिर मिलकर प्रजा-उत्पत्तिमें ब्रह्माका हाथ क्यों न बटाएँ। अब वेदोंकी कक्षामें देखें सामका स्थान।

साम शब्द और उसका अर्थ

"षो अन्तकर्मणि"—इस धातुसे 'मनिन्' प्रत्यय करनेपर साम शब्द बना। जिसका अर्थ हुआ—पापनाशक। बृहदारण्यक ने और ही निर्णय-शैली अपनाई है—"सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्" (बृ० उ० १।३।२२) सा=ऋचा च=और अमः=स्वर—ये दोनों साम हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि गान और ऋक्मन्त्र मिलकर साम कहे जाते हैं। परन्तु जैमिनि-सूत्र तो केवल गानको ही साम कहता है—"गीतिषु सामाख्या" (जै० सू० २।१।३६)। अब इन उक्त दोनों प्रमाणों पर ध्यान देनेसे विषमता दूर हो जायगी। मीमांसक केवल जाति आदि धर्मोंमें ही शब्दकी शक्ति मानते हैं शेष लक्षणा आदि वृत्तियोंसे धर्म और धर्मी दोनोंका हो सकता है। साम सदैव ऋचापर ही गाया जाता है—"ऋच्यध्यूढं साम गीयते" छा० (१।६।१)। अब साम शब्दकी शक्ति तो अनप-सम्य गान धर्ममें ही है, ऋक् शब्द—लक्ष्य ऋचा रूप धर्मीमें नहीं; बोध दोनोंका हो सकता है। इसलिए निश्चय हुआ कि शक्ति-मार्गको दृष्टिमें रखते हुए जैमिनि ने अपना सूत्र रचा और बोधमार्गी पर उक्त छान्दोग्य-वाक्य आश्रय है। दोनोंमें कोई विरोध नहीं; मत-भेद है।

साम संहिता और उसके प्रकार

साम्प्रदायिकोंका कहना है कि—'मन्त्रसंहिता' यह मन्त्र नाम है। वस्तुतः 'मन्त्र—मन्त्रसंहिता' होना चाहिए था। क्योंकि

ऋग्वेदमें उसका चिन्ह दोका अङ्क है—'या२'। अत सामवेद का प्रथम मन्त्र जो कि ऊपर उदाहृत है, ऋग्वेदमें ऐसा लिखा है—

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि। (ऋ० ६।१६।१०)

सामवेदमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरितके चिन्ह दिखाए गये हैं और चौथा स्वर बिना चिन्हका होता है। इस प्रकार स्वर-चिन्ह विलक्षण होने पर भी उदात्तादि स्वरोंका कोई भेद नहीं। छान्दोग्यमें इसी भावसे कहा है—"या ऋक् तदेव साम"॥ एक विरूपता अवश्य रह जाती है कि सामवेदमें कहीं-कहीं वर्णों पर 'र', 'क' और 'उ'के चिह्न मिलते हैं। उनका रहस्य यह है—जब दो उदात्त एकत्र हो जाते हैं तब प्रथम उदात्तके ऊपर एकका अङ्क लगता है; दूसरा बिना चिन्हके ही रहता है। परन्तु इस द्वितीय उदात्तसे परे स्वरित यदि हो तो उस स्वरित पर "रकार-सहित दोका अङ्क लगेगा जैसे—'ता२र'

२ अनुदात्तसे पर स्वरित पर भी '२र'—यही चिन्ह रहेगा। किंतु तब स्वरितके पूर्व अनुदात्त पर '३क'—यह चिन्ह लगेगा जैसे 'तन्वा३क२र' (सा. ९२)

३. जब दो उदात्त एकट्ठे हो जायँ और उनसे परे यदि अनुदात्त हो। तब प्रथम उदात्त पर '२३'—यह चिन्ह और दूसरा उदात्त चिह्न शून्य रहेगा।

२—गान संहिता

पहले ही कहा जा चुका है कि सामवेदमें उन ऋचाओंका संग्रह मात्र है जिन पर साम गाया जाता है। उन मन्त्रोंके ऊपर महर्षियोंने अनन्तभेद-भिन्न गान व्यक्त किए हैं। जो कि तत्तद् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं। और वे गाने किसी-किसी संहितामें छपे हैं।

लौकिक गान—साम गान तक पहुँचनेके लिए पहले लौकिक गानके स्वरों पर थोड़ा ध्यान दे लेना आवश्यक है।

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशद्, इत्येतत्स्वरमण्डलम्॥

यह नारदीय शिक्षा-वचन व्यक्त कर रहा है कि स्वर = ७, ग्राम = ३, मूर्छना = २१, तान = ४९ हैं। अधिक विस्तार न हो; अतः हम यहाँ केवल स्वरोंको लेते हैं। सात स्वरोंके नाम भी नारदीय शिक्षामें दिये हैं—

षड्जश्च ऋषभश्चैव, गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव, निषादः सप्तमः स्वरः॥

(नारदीय० ।२।६)

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद्—ये स्वर हैं। इन स्वरोंके स्तोम वर्ण हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

साम-गान—उक्त लौकिक गानसे साम गानमें पर्याप्त वैलक्षण्य पाते हैं। प्रथम तो यहाँ उन षड्जादिकोंके नाम ही और हैं—

प्रथमश्च द्वितीयश्च, तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार, एतान् कुर्वन्ति सामगा॥
(नारदीय० १।१२)

अर्थात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट तथा अतिस्वार—ये साम-गान करनेवालोंके अपने स्वर नाम हैं। फिर साम-गायकोंको गाना नहीं आता या क्या है? इनके यहाँ सब लौकिक स्वर इधर-उधर हो जाते हैं—

यः सामगानां प्रथमः, स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयस्स गान्धारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृत॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः, पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पञ्चम स्मृतः॥

सामगोंका प्रथम = वेणुका मध्यम (४) म
" द्वितीय = " गान्धार (३) ग
" तृतीय = " ऋषभ (२) रे
" चतुर्थ = " षड्ज (१) सा
" पञ्चम = " निषाद (७) नि
" षष्ठ = " धैवत (६) ध
" सप्तम / " अतिस्वार } = " पञ्चम (५) प

२—गान संहिता

पहले ही कहा जा चुका है कि सामवेदमें उन ऋचाओंका संग्रह मात्र है जिन पर साम गाया जाता है। उन मन्त्रोंके ऊपर महर्षियोंने अनन्तभेद-भिन्न गान व्यक्त किए हैं। जो कि तत्तद् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं। और वे गाने किसी-किसी संहितामें छपे हैं।

लौकिक गान—साम गान तक पहुँचनेके लिए पहले लौकिक गानके स्वरों पर थोड़ा ध्यान दे लेना आवश्यक है।

> सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्छनास्त्वेकविंशतिः।
> ताना एकोनपञ्चाशद्, इत्येतत्स्वरमण्डलम्॥

यह नारदीय शिक्षा-वचन व्यक्त कर रहा है कि स्वर=७, ग्राम=३, मूर्छना=२१, तान=४९ है। अधिक विस्तार न हो; अतः हम यहाँ केवल स्वरोंको लेते हैं। सात स्वरोंके नाम भी नारदीय शिक्षामें दिये हैं—

> षड्जश्च ऋषभश्चैव, गान्धारो मध्यमस्तथा।
> पञ्चमो धैवतश्चैव, निषादः सप्तमः स्वरः॥
> (नारदीय० २।९)

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—ये स्वर हैं। इन स्वरोंके संकेत वर्ण हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

साम-गान—उक्त लौकिक गानसे साम गानमें पर्याप्त वैलक्षण्य पाते हैं। प्रथम तो यहाँ उन षड्जादिकोंके नाम ही और हैं—

प्रथमश्च द्वितीयश्च, तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार, एतान् कुर्वन्ति सामगा॥
(नारदीय० १।१२)

अर्थात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट तथा अतिस्वार—ये साम-गान करनेवालोंके अपने स्वर नाम हैं। फिर साम-गायकोंको गाना नहीं आता या क्या है? इनके यहाँ सब लौकिक स्वर इधर-उधर हो जाते हैं—

यः सामगानां प्रथमः, स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयस्स गान्धारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृत॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः, पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पञ्चम· स्मृतः॥

सामगोंका प्रथम = वेणुका मध्यम (४) म
" द्वितीय = " गान्धार (३) ग
" तृतीय = " ऋषभ (२) रे
" चतुर्थ = " षड्ज (१) सा
" पञ्चम = " निषाद (७) नि
" षष्ठ = " धैवत (६) ध
" सप्तम / " अतिक्रुष्ट = " पञ्चम (५) प

स्वर-विस्तार नारदीय शिक्षा और बृहद्देवताके अन्तिम श्लोकोंमें देखना चाहिए।

अष्ट विकार — साम गानके साँचेमें ढालनेके लिए मन्त्र-वर्णोंमें किए जानेवाले परिवर्तनोंके आठ कारण सोदाहरण निम्नाङ्कित हैं।

क्रमाङ्क	निमित्त	लक्षण	उदाहरण
१	विकार	एकवर्णके स्थानमें दूसरा	अग्ने = 'ओग्नायि।'
२	विश्लेष	सन्धि-विच्छेद	वीतये='वो येतोया२यि'
३	विकर्षण	लम्बा खींचना	ये = या २३ यि
४	अभ्यास	पुनः पुनः उच्चारण	तोया२ यि, तोया२यि
५	विराम	एक पदके मध्यमें भी ठहर जाना	गृणानो हव्यदातये=गृणा नो ह। व्यदातये।
६	स्तोभ+	निरर्थक वर्ण	औ हो वा, हाऊ, हावु
७	आगम	अधिक वर्ण	वरेण्यम् = वरेणियोम्
८	लोप	मन्त्र-वर्णका अनुच्चारण	प्रचोदयात्=प्रचोऽ१२ऽ१२ दुम्। आ २। दायो। आ ३४५।

+ ऋचो यदधिकं किञ्चिद्, द्विरुक्तं वापि दृश्यते।
स्तोभं तस्य मन्यन्ते, क्रमशः शास्त्रचिन्तकाः॥
(स्तोभानु० परिशिष्ट १।१।६)

गानप्रिय महाशय हमारे प्रथम साम-मन्त्रका गौतम-पर्क सुनें। सब विकार-उदाहरण एकत्र हैं —

ओग्नाइ। आ या ही ऽ ३। वो इ तो या ऽ २ इ। तोयाऽ २ इ। गृणानोह। व्यदातो याऽ२इ। तोयाऽ२इ। नाइ होता साऽ२इ। त्साऽ २ इ। वाऽ २३४ ओहोवा। हीऽ २३४षी ॥ १ ॥

सामवेदकी शाखाएँ

पातञ्जल महाभाष्यमें लिखा है — "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" अर्थात् सामवेदकी एक हजार शाखाएँ हैं। सर्वानुक्रमणी का भी यही पक्ष है। क्रमशः ह्रास होता गया। ह्रास कारण पर प्रकाश डालते हुए चरणव्यूहमें शौनकने एक गाथा लिखी है — कुछ उतावले पढ़ैया पड़वा आदि अनध्याय तिथियोंमें भी साम पढ़ने लगे। क्रोधमें आकर इन्द्रने सब शाखाओंमें आग लगा दी। बहुतसी स्वाहा हो गईं। केवल सोलह§ बच रहीं — (१) आसुरायणीय, (२) वासुरायणीय, (३) वार्तान्तरेय, (४) प्राञ्जल, (५) ऋग्वर्णभेद, (६) प्राचीनयोग्य, (७) ज्ञानयोग्य, (८) राणायन, (९) शाट्यायन,

---

§ मुक्तिकोपनिषद्में सामवेदके १६ उपनिषद्ग्रन्थोंका उल्लेख भी १६ शाखाओंकी ओर सङ्केत करता है। परन्तु उपनिषदोंके नाम शाखा नामोंसे अत्यन्त विजातीय हैं।

(१०) सात्वल, (११) खल्वल, (१२) महाखल्वल, (१३) लाङ्गल, (१४) कौथुम, (१५) गौतम, (१६) जैमिनीय।

इन्द्र-कोपसे १६ बचीं तो काल-कोपमें तेरह पड़ गईं। इस समय तीन ही शाखाएँ उपलब्ध हैं — कौथुम, राणायनीय और जैमिनीय।

(१) कौथुम-शाखा

कौथुम-संहिता *

यह वही संहिता है; जिसके मनोहरमन्त्रोंसे भगीरथने भगवती गङ्गाको प्रसन्न कर लिया था। जो आज भी उसी प्रसन्नताके साथ अपने चिरातीत ऐतिहासिक मधुर गीत गा-गाकर भारतको ही नहीं, विश्वको आनन्द-विभोर कर रही है। कौथुम-संहिताके प्रचार-स्थल हैं — काशी, कन्नौज, बङ्ग और गुजरात। इसके प्रधानतया दो भेद हैं — पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। आरण्यकाध्याय पूर्वार्चिकका परिशिष्ट है और महानाम्नी-आर्चिक आरण्यकाध्यायका परिशिष्ट। कुछ विद्वान् आरण्यकाध्यायको पूरी संहिताका परिशिष्ट मानते हैं।

---

* कुछ विद्वान् 'कौथुम' शब्दका मूल 'कौटुम' बताते हैं। क्योंकि इस संहिताके प्रातिशाख्यकी संज्ञा कौटुम सूत्र, पुष्पसूत्र आदि आती है। 'कौथुम' शब्दका कौथुम बनना कठिन नहीं। परन्तु दूसरे विद्वान् 'कौथुम' नाम ही मौलिक मानते हैं; कौटुम नहीं।

(१) पूर्वार्चिक — एक ऋचावाले ५८५ सूक्तोंका संग्रह है। इसमें उत्तरार्चिक पठित सूक्तोंकी योनि* ऋचाएँ आजाती हैं। केवल ६१ योनि ऋचाओंका पाठ पूर्वार्चिकमें नहीं। इस कमीका कारण है — पूर्वार्चिकमें सामयागके प्रति मननीय गायत्र सामकी योनि ऋचाओंका अपाठ। ६१ सूक्तों पर गायत्र साम गाया जाता है। इन सूक्तोंकी प्रथम प्रथम ऋचाएँ छोड़कर शेष सब साम योनि ऋचाएँ पूर्वार्चिकमें पढ़ी गई हैं। पूर्वार्चिकमें ६ प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठकमें २ अर्ध प्रपाठक हैं। दोनों अर्ध प्रपाठकोंमें दस दशतियाँ आजाती हैं। परन्तु अन्तिम प्रपाठकके अर्ध प्रपाठकोंमें केवल नौ दशतियाँ हैं। प्रायः १० ऋचाओंकी एक दशति होती है। कुछ दशतियोंको इस नियमसे वञ्चित रहना पड़ा है।

प्रपाठकादि-विवरण

प्रपाठक	अर्धप्र०	दशति	विशेषता
१	२	१०	प्र-मार्धकी तृतीय द० में १४ ऋचाएँ, द्वितीयार्धकी प्रथम, तृतीय द० में ८, पञ्चमम ६, शेषमें १०, १० सब =९६ ऋ०

* एक साम तीन ऋचाओं पर गाया जाता है। प्रथम ऋचाको योनि ऋचा कहते हैं। क्योंकि वह एक नियत ऋचा है। साम — नामम उसी ऋचाकी प्रतीक होती है। जैसे —वारवन्तीय सामका "अश्वं नत्वा वारवन्त" मित्यादि ऋचा नियत आधार है।

२	२	१०	प्रथमार्धकी द्वितीय द० में ८, द्वितीयार्धकी पञ्चम द० में ९, शेषमें १०, १० सब =९७ ,,
३	२	१०	प्रथमार्धकी तृतीय द० में ९ शेषमें १०, १० सब योग=९९ ,,
४	२	१०	प्रथमार्धकी चतुर्थ द० में ९, द्वितीयार्धकी द्वितीय द० में ८ और चतुर्थ द० में ११, सब=९८ ,,
५	२	१०	प्रथमार्धकी प्रथम द० में ८ और चतुर्थ द० में ८, शेषमें १०, १० सब =९६ ,,
६	२	९	प्रथमार्धकी द्वितीय द० में १४, तृतीय और पञ्चममें १२, १२; द्वितीयार्ध प्रथममें ९, द्वितीयार्धकी द्वितीय द० में १२, तृतीय द० में १२ चतुर्थमें ८ सब =९९ ,,

सम्पूर्ण योग ५८५

(२) **उत्तरार्चिक** — में ९ प्रपाठक हैं। प्रथमके पाँच प्रपाठकों तक दो-दो अर्ध प्रपाठक हैं; शेष चार प्रपाठकोंमें तीन-तीन अर्ध प्रपाठक हैं। कुछ विद्वान् ११ प्रपाठक मानते हैं और प्रत्येक प्रपाठकमें दो-दो अर्ध प्रपाठक। दोनों मतोंमें सब अर्ध

प्रपाठक २२ ही होते हैं। अर्ध प्रपाठक खण्डोंमें विभक्त है। पूर्ण विवरण यह है—

प्रपाठक	अर्ध प्र०	खण्ड संख्या	सूक्त सं०	ऋचाएँ
१	प्रथम	६	२१	६२
	द्वितीय	६	२२	६२
२	प्रथम	६	१९	५५
	द्वितीय	६	१९	५६
३	प्रथम	७	२२	६९
	द्वितीय	७	२३	७६
४	प्रथम	६	२४	८३
	द्वितीय	७	१४	५९
५	प्रथम	९	२०	८०
	द्वितीय	१२	२३	९७
६	प्रथम	३	११	३२
	द्वितीय	६	२०	५६
	तृतीय	६	१८	५४
७	प्रथम	४	१६	४६
	द्वितीय	४	१४	३८
	तृतीय	८	२१	४४
८	प्रथम	४	१४	४०
	द्वितीय	४	१९	५४
	तृतीय	५	१८	५४
९	प्रथम	४	१८	५१
	द्वितीय	७	१३	३३
	तृतीय	१	९	२७

९ प्रपाठक, २२ अर्ध, ख०=११९, सू०=४००, ऋ०=१२२५

उत्तरार्चिकके ४०० सूक्तोंमें १३ सूक्त एक-एक ऋचावाले, ६६ सूक्त दो-दो ऋचाओंवाले, २८७ सूक्त तीन-तीन ऋचाओंवाले, ९ सूक्त चार-चार ऋचाओंवाले, ४ सूक्त पाँच पाँच ऋचाओंवाले, १० सूक्त छः-छः ऋचाओंवाले, २ सूक्त सात-सात ऋचाओंवाले, १ सूक्त आठ ऋचाओंवाला, ३ सूक्त नौ-नौ ऋचाओंवाले, ३ सूक्त दस-दस ऋचाओंवाले और २ सूक्त बारह-बारह ऋचाओंवाले हैं। कुछ ग्रन्थोंमें दो सूक्तों और दो ऋचाओंकी घट-बढ़ भी देखी जाती है।

२—राणायनीय शाखा

राणायनीय संहिता

सर्व-प्रथम १८४२ ई० में लण्डनसे स्टेवेन्सन (G. Stevenson) ने अंग्रेजी अनुवाद-सहित राणायनीयका प्रकाशन किया था। भारतमें मुद्रण न होनेके कारण १९१६ ई० में एक भारतीय विद्वान्ने सत्यव्रत सामश्रमीकी आलोचना करते हुए लिख दिया था—"प्रतीत होता है सत्यव्रतने मद्दीदासके लेख पर ही निर्भर कर तीन शाखोंका मिलना लिख दिया है। . . . यदि राणायनीय संहिता तथा जैमिनी शाखा संहिता, किसीके हों और वह छपवा दे, तो बड़ा लाभ समझा जा सकता है।" इस लेखसे पूर्व केवल राणायनीय संहिता ही मुद्रित न हो चुकी थी; अपि तु जैमिनीय संहिताका भी प्रकाशन कैलेण्ड (W. Caland) द्वारा हो जा चुका था। अब तो स्वाध्याय-

मण्डलसे कई उपयोगी सूचियोंवाली सामवेद संहिता छप चुकी है। जिसमें जैमिनीय संहिताका पाठ-भेद भी दिया हुआ है। और राणायनीयकी बात भी प्रस्तावनामें लिखी है—"वर्तते तावदेपा राणायनीया सामसंहिता राणानीयाना कौथुमानां च। तयोर्मन्त्रभेदो नास्ति केवलं गणनापद्धतिभेद एव। एके प्रपाठक-अर्धप्रपाठक-दशतिभिः, अन्ये अध्यायैः खण्डै: मन्त्रान् गणयन्ति।" अर्थात् राणायनीय और कौथुमका कोई विशेष भेद नहीं; केवल गणना-पद्धतिका अन्तर है। एकमें प्रपाठकादिकी गिनती है और दूसरीमें अध्यायादिकी। कहीं-कहीं पाठ-भेद तथा उच्चारण-भेद भी है। जैसे कौथुमके 'हाउ'की जगह राणायनीयमें 'हावु' है। कौथुम शाखावाले ऋग्वेदियों जैसा 'वाजेषु नो' उच्चारण करते हैं किन्तु राणायनीय-शाखावाले 'वाजेषु णो' बोलते हैं। राणायनीयका प्रचार दक्षिण प्रान्तमें है।

कौथुमीय और राणायनीयके ब्राह्मण

दोनों संहिताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण आठ हैं—(१) ताण्ड्य ब्राह्मण (पञ्चविंश[¶] ब्रा०), (२) षड्विंश ब्राह्मण[§],

¶ २५ प्रपाठक होनेसे ही 'पञ्चविंश' इसका नाम है। यह दो भागोंमें सायण भाष्यसहित १८७४ ई० में छपा था।

§ के० क्लेम-प्रकाशित १८९३ ई० में

(३) मन्त्रब्राह्मण*, (४) सामविधान ब्राह्मण†, (५) दैवत ब्राह्मण†, (६) आर्षेय ब्राह्मण†, (७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण†, (८) वंश ब्राह्मण† ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण — (१) ताण्ड्यब्राह्मण, ‡ (२) षड्विंश ब्राह्मण, (३) मन्त्र ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् — ये सब मिलकर ताण्ड्य महाब्राह्मण कहे जाते हैं । कुछ लोग ताण्ड्य ब्राह्मणको ही ताण्ड्य महाब्राह्मण कह देते हैं । ताण्ड्य ब्राह्मणमें २५ प्रपाठक, ३४७ खण्ड हैं । षड्विंशमें ५ प्रपाठक और पाँचोंमें क्रमशः ७, १०, १२, ७, १० खण्ड हैं । मन्त्रब्राह्मण दो प्रपाठकोंमें विभक्त है और दोनों प्रपाठकोंमें दो-दो खण्ड हैं । छान्दोग्य उपनिषद्के ८ प्रपाठक मिला कर सब ४० प्रपाठक होते हैं । अतः ताण्ड्य महाब्राह्मणमें ४० प्रपाठक हैं । षड्विंशका पञ्चम प्रपाठक अद्भुत कथाओंका संग्रहात्मक होनेसे अद्भुत ब्राह्मण‡ कहलाता है ।

(४) सामविधान ब्राह्मण — इसमें अधिकारयुक्त और अशक्त व्यक्तियोंकी शुद्धिके लिए कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और

---

* सत्यव्रत सामश्रमी १८९० ई०

† बर्नेल (A. C. Burnell) – सम्पादित सामविधान ब्रा० लण्डनसे १८७३ ई० में, वंश ब्रा० + दैवत ब्रा० १८७३ ई०में, आर्षेय ब्रा० १८७६ ई० में, संहितोप० ब्रा० १८७७ ई० में मंगलोरसे पहले निकला था ।

‡ प्रो० वेबरने जर्मन-अनुवादके साथ १८५८ ई० में बर्लिनसे प्रकाशित किया ।

अग्न्याधान, अग्निहोत्रादि तथा साम सविधानोंका संग्रह है। यह तीन प्रपाठकोंमें विभक्त है। प्रथम एवं द्वितीय प्रपाठकमें आठ-आठ खण्ड, तृतीयमें नौ खण्ड है।

(५) दैवत ब्राह्मण — तीन खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्डमें २६ कण्डिकाएँ, द्वितीयमें ११ और तृतीयमें २५ है। सब ६२ कण्डिकाएँ हैं।

(६) आर्षेय ब्राह्मण — तीन प्रपाठकोंका है। क्रमश. प्रपाठकोंमें २५, २५, २९ खण्ड हैं। सब खण्ड ८२ होते हैं। सामके ऋषि, गोत्र, छन्द, देवतादि विषय इसमें स्पष्ट प्रतिपादित हैं।

(७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण — इसमें केवल एक प्रपाठक है; जिसम ५ खण्ड हैं।

(८) वंश ब्राह्मण — सामवेदीय आचार्योंकी वंश परम्पराका प्रतिपादक है। तीन खण्डोंमें बँटा है।

छान्दोग्य उपनिषद् — यद्यपि कौथुम शाखा सम्बन्धी सभी ब्राह्मणग्रन्थोंको छान्दोग्य ब्राह्मण कहते हैं। तथापि मन्त्रब्राह्मणको विशिष्ट रूपसे छान्दोग्य ब्राह्मण कहा जाता है। इसी छान्दोग्य ब्राह्मणके अन्तिम आठ प्रपाठक (अध्याय) छान्दोग्य उपनिषद्के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्म भावके प्रतिपादनमें इसका प्रधान स्थान है। कई आचार्योंके भाष्योंसे विभूषित है।

३ — जैमिनीय शाखा

जैमिनीय संहिता — कर्नाटक प्रान्तमें विशेष प्रचलित है। लाहौरसे डाक्टर रघुवीर शर्मा-द्वारा स्वर-चिन्ह-रहित जैमिनीय संहिता प्रकाशित की जा चुकी है। अभी हालमें स्वाध्याय-मण्डलसे प्रकाशित सामवेदके अन्तमें इस संहिताका विशेष पाठ मात्र छपा है। यही विशेष पाठ महाशय कालेण्डने रोमन लिपिमें पहले प्रकाशित किया था। कालेण्ड-मतानुसार जैमिनीय संहिताकी मन्त्र-संख्या १६८७ है। अर्थात् पूर्वार्चिक और आरण्यक — इन दोनोंमें ६४६, शेष १०४१ मन्त्र उत्तरार्चिकमें हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण — इसको तल्वकार ब्राह्मण भी कहते हैं। क्योंकि जैमिनिके एक शिष्यका नाम तल्वकार था। उदारचेता आचार्यने शिष्यका भी नाम स्वयं प्रसिद्ध किया होगा; या कि शिष्य ही अपने घोर श्रम तथा गाढ़ानुरागके कारण आचार्यके समान माननीय बन गया होगा। जैमिनिके उपासक अवश्य तल्वकारको भी साथ रखते हैं —

सामाखिलं सकलवेदगुरोर्मुनीन्द्रा—
ह्यासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम्।
व्यक्तं समस्तमपि सुन्दरगीतरागं,
तं जैमिनिं तल्वकारगुरुं नमामि ॥

कुछ भी हो जैमिनीय ब्राह्मणका प्रवचन तल्वकारने भी असाधारणतया किया — यह मानना पड़ेगा। यह ब्राह्मण तीन

भागोंमें विभक्त है। तीनोंमें सब ११८२ खण्ड हैं। प्रथम भागमें ३६०, दूसरेमें ४३७ तथा तृतीयमें ३८५ खण्ड हैं।

जैमिनीय उपनिषद्—इसका ही नाम 'केन' उपनिषद् है। तल्वकार ब्राह्मणके अन्तर्गत होनसे 'तल्वकार उपनिषद्' भी इसे कहते हैं। इसी उपनिषद्में अग्नि और इन्द्र आदि देवोंका गर्व चूर करनेके लिए यक्ष-रूपमें ब्रह्मका प्रकट होना बताया गया है। शङ्कराचार्यादि भारतीय विशिष्ट विद्वानोंके इस पर भाष्य मुद्रित हैं।

सामवेदके सूत्र-ग्रन्थ

साम सूत्रोंकी कमी नहीं। ज्ञात होता है कि और वेदोंकी अपेक्षा अपने वेद 'साम'को शरीरमें दुबला-पतला देखकर ब्राह्मण और सूत्र एक बड़ी भीड़ बनाकर दौड़ पड़े कि कहीं सामवेदका पलड़ा हल्का न रह जाय। अस्तु, श्रौत सूत्रोंके नाम पढ़ें—माशक, लाट्यायन, द्राह्यायण, अनुपद, पुष्प (कुसुम) आदि।

माशक श्रौतसूत्र—पञ्चविंश ब्राह्मणके आधार पर रचा गया है। सत्रोंका इसमें विशद विवेचन है। जनक सप्तरात्र-यज्ञकी भी इसमें चर्चा है। वरदराजने इस पर भाष्य किया है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र*—इसका भी अवलम्बन पञ्चविंश ब्राह्मण ही है। इसमें सोमयागके साधारण नियम, एकाह और सत्रोंकी पद्धतियाँ सुन्दर ढंगसे निरूपित हैं।

* सम्पादक आनन्दचन्द्र अग्नि स्वामी—भाष्य—सहित १८७२ ई० में निकाला है।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र[×] — राणायनीय शाखासे अपना सम्बन्ध रखता है। इसमें १० प्रपाठक हैं। वसिष्ठ सूत्र भी इसका नामान्तर है। माध्वस्वामीका इस पर भाष्य है।

अनुपद श्रौतसूत्र — पञ्चविंश ब्राह्मण और षड्विंश दोनोंसे सम्बन्ध रखता है। सामवेदकी ऐतिहासिक सामग्रीका यह एक कोश है।

कुसुम श्रौतसूत्र — ऋक्मन्त्र रूपी कली किस प्रकार सामरूप पुष्प बन कर खिली — यह बात इस ग्रन्थमें मोहक शब्दोंमें दी हुई है। यही स्यात् कुसुम नामका निमित्त हो। गोभिल महर्षिकी कृति इसे बताते हैं। पर दाक्षिणात्य विद्वान् वररुचिकी रचना मानकर 'फुल्लसूत्र' नाम रखते हैं।

निदानसूत्र — इसमें दस प्रपाठक हैं। इसमें उक्थादि गानकी पर्यालोचना, विभिन्न शाखाओं और वेदाचार्योंकी चर्चा की गई है। सत्यव्रत शर्मा-द्वारा मुद्रित हो चुका है।

जैमिनि-श्रौतसूत्र — जैमिनि-ब्राह्मणका यह श्रौत सूत्र है।

सामवेदके गृह्यसूत्र

सामवेदीय गृह्यसूत्रोंमें प्रसिद्ध — गोभिल, खदिर, पितृमेध, जैमिनीय तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र हैं।

गोभिल गृह्यसूत्र — कौथुम और राणायनीय दोनों

× जे० एन० रूटर-सम्पादित

शाखाओंसे सम्पर्क रखता है। चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसका परिशिष्ट कात्यायन-प्रणीत है। जिसका नाम है कर्म-प्रदीप। गोभिल गृह्यसूत्र १८८० ई० में म० म० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने दो भागमें प्रकाशित किया था और गोभिल-परिशिष्ट १९०९ ई० मे। सत्यव्रत सामश्रमीका गो० गृह्यसूत्र-बंगानुवाद भी कलकत्तासे छपा है।

खादिर गृह्यसूत्र—इस पर वामनकी श्लोकबद्ध व्याख्या है। रुद्रस्कन्द स्वामीकी वृत्ति भी इस पर है। द्राह्यायण तथा खादिर दोनों एक ही ऋषिकी रचनाएँ हैं—ऐसा भी एकमत है।

पितृमेध गृह्यसूत्र—गौतम महर्षिका लिखा बनाया जाता है। इसके टीकाकार अनन्तज्ञानका मत है कि न्याय-सूत्र-कर्ता गौतम महर्षिसे पितृमेध-कर्ता गौतमका अभेद है। इसके सिवा गौतम रचित एक गौतम-धर्मसूत्र भी है।

जैमिनि-गृह्यसूत्र—इसका प्रकाशन सर्व प्रथम १९०६ ई० मे गास्ट्रा (D Gaastra) ने डचभाषामें किया तदनन्तर १९२२ ई० में कैलेण्ड (W Caland) ने उपयुक्त टिप्पणीके साथ देवनागरी लिपिमें किया। जैमिनीय ब्राह्मणसे इसका सम्बन्ध तो नामसे ही व्यक्त है। सामवेदका और भी सूक्ष्म साहित्य प्रकाशित हो चुका है। परन्तु उसका विचार अधिक समय और स्थानकी अपेक्षा करता है। स्थूलरूपसे सामवेदका यही परिचय है।



४. अथर्ववेद

लोकोपकारकी दृष्टिसे अथर्ववेदका वेद-पंक्तिमें उच्चतम स्थान है। जिसे बुलर (Buller), मूलर (Muller) के नामकी लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकनेवाले नये पारखी वेद ही नहीं मानते। यदि मानते भी हैं तो कलके किसी ईरानी जादूगरका बनाया हुआ कहते हैं। हमारे अपौरुषेयता तथा अनादित्ताके समर्थक पण्डित-गण नाक-भौं सिकोड़ देना ही पर्याप्त समझ लेते हैं। हाँ! कुछ विद्वान् प्रमाण वाक्य बोल देते हैं—"यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ते" (ऋ० १।८३।५), "चत्वारि शृङ्गा त्रयो-अस्य पादाः" (ऋ० ४।५८।३) का व्याख्यान निरुक्त—"वेदा एवैते उक्ताः" (नि० परि० १।७), "ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः" (तापनीय० उ०)। "तत्रापरो ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः" (मुं० उ० १।१।५), "अथर्वाणं चतुर्थम्" (छान्दो० उ० ७।२।१), "ऋग्वेदो, यजुर्वेद, सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः" (बृह० उ० ४।१।२) आदि-आदि। आन्तरिक तथा बाह्य परीक्षणसे दूधका दूध और पानीका पानी हो सकता है। किन्तु परीक्षण क्रीड़ाके लिए लेखनी विस्तृत प्राङ्गण चाहती है। यहाँ केवल निर्णयात्मक पहलू ही सामने रखना है।

अथर्ववेदका अधिकार ज्ञान ध्यान तक ही सीमित नहीं; जादू-टोना, दवा-दारू, यन्त्र-मन्त्र भी सिखा देता है। अतएव

इसके अनेक नाम हैं—(१) अथर्ववेद, (२) ब्रह्मवेद, (३) अथर्वाङ्गिरोवेद, (४) भृग्वङ्गिरोवेद, (५) क्षत्रवेद, (६) भैषज्यवेद आदि।

(१) 'अथर्ववेद' नाम-निमित्त — गोपथ ब्राह्मण इस विषयका विशदीकरण एक रहस्यमय कथाके द्वारा करता है* —कल्पारम्भमें स्वयम्भू ब्रह्मा अकेले थे। मनमें आई—'अपने समान दूसरा देव बना लूँ'। सङ्कल्प-सिद्धिके लिए ऐसा घोर तप किया कि एक एक रोमकूपसे पसीनेकी मोटी धारा बह चली। देखते देखते ब्रह्मपुत्र जैसा नद भर गया। ब्रह्माने ज्योंही अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब उस जलमें देखा, त्यों ही तेज स्खलित होकर जलमें मिल गया। तुरन्त जल 'मधुर' और 'क्षार' दो भागोंमें विभक्त हो गया। मधुर जलसे 'भृगु' महर्षि उत्पन्न हो गये। ब्रह्माजी उसी जलमें छिप गये। भृगु बड़ी तत्परतासे अपने उत्पादकको खोजने लगे। उनकी व्यग्रता देख किसीने आकाशवाणी की —"अथर्वाङेनमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छ" (गो० ब्रा० १।४) अर्थात् अब नीचेके इसी जलमें खोज। जलकी ओर देखते ही भृगु अथर्वा बन गये। अपने समान आकारवाले अथर्वाको ब्रह्माने देख, आज्ञा दी—'प्रजाका उत्पादन तथा पालन करो'। अब अथर्वा प्रजापति बन गये और दस ऋषि पैदा कर दिए। दसोंने दस और बनाये। इन सब ऋषियोंसे दृष्ट मन्त्र समुदायका नाम अथर्वाङ्गिर संहिता पड़ा।

* गो० ब्रा० १।४

इस कथाका तात्पर्य योग साधनामें प्रतीत होता है। जिसकी ओर निरुक्तकारकी भी गुप्त प्रेरणा है — "अथर्वाणोऽथर्वणवन्त. । थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः" (नि० दै० ११।२। ७) अर्थात् 'थर्व' धातुका अर्थ है — 'चलना'। इससे निष्पन्न 'अथर्व' शब्दका भाव होता है — 'न चलना' = स्थिरता। स्थिरता योगि-प्राणोंमें होती है। इस प्रकार प्राण-साधनाका प्रतिपादक होनेसे चतुर्थवेद अथर्ववेदके नामसे प्रख्यात हुआ। प्राण-साधनाके लिए अथर्ववेदके दर्शनीय सूक्त हैं — २।२८; ९।२८, ३०; ७।४।९३; ८ १, २; ११।६ आदि।

२. 'ब्रह्मवेद' — कतिपय विद्वान् इस नाम करणका कारण, 'ब्रह्म' नामक ऋत्विक्का विशेष सम्बन्ध होना बताते हैं। अर्थात् जैसे — 'होता' का ऋग्वेदसे 'अध्वर्यु' का यजुर्वेदसे, उद्गाताका सामवेदसे घनिष्ट सम्बन्ध है; वैसे 'ब्रह्मा' का अथर्ववेदसे अति निकट सम्पर्क ब्राह्मणोंने स्थापित किया है — "प्रजापतिर्यज्ञमतनुत स ऋचैव हौत्रमकरोत्, यजुषाध्वर्यवम्, साम्नौद्गात्रम्, अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्" (गोप० ब्रा० ३।२)।

अन्य वैदिकमनीषी कहते हैं कि 'ब्रह्मा' का चारों वेदोंसे सम्पर्क है;* न कि केवल अथर्ववेदसे। अतः उक्त नाम-करणमें 'ब्रह्मा' का सम्बन्ध निमित्त नहीं; अपितु 'ब्रह्म-तत्व-प्रतिपादन' है। स्वयं श्रुति स्फीतरूपसे कहती है —

* "ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति" (नि० १।८)।

"ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव,
विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा,
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।"
(मु० उ० १।१।१)

अर्थात् विश्व-स्रष्टा, भुवन-रक्षक समस्त देवोंके बाबा ब्रह्माजी पहले प्रकट हुए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र अथर्वाको निखिल विद्याओंमें श्रेष्ठ ब्रह्म-विद्या पढ़ाई। अथर्ववेदके २।१; ४।१; ५।६; ९।९,१० आदि सूक्तोंमें ब्रह्म-विद्याका बहुत सुन्दर वर्णन है।

३. अथर्वाङ्गिरोवेद — इस संज्ञाका प्रवृत्ति-निमित्त ओषधि-निरूपण है। क्योंकि अङ्ग = शरीरके रस = सप्त धातुका पोषक ओषधि-कोश इस वेदमें है —

"आथर्वणीराङ्गिरसी दैवी मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ।।"
(अथर्व० ११।६।१६)

हे प्राण! वायो! जब तुम (जिन्वसि) वर्षा करोगे; तब महर्षि अथर्वा और अङ्गिरा एवं देव, मनुष्योंसे आविष्कृत ओषधियाँ पैदा होंगी।

४. भृग्वङ्गिरोवेद — इस नामका निमित्त गोपथब्राह्मण-प्रोक्त कथासे सूचित है; जिसकी चर्चा प्रथम नाम-निमित्तमें हो चुकी है।

५. क्षत्रवेद — राज्य-रक्षण और युद्धादि रूप क्षात्र धर्मका निरूपक होनेसे अथर्ववेद क्षत्रवेदके नामसे भी पुकारा जाता है। अथर्वके क्षात्र धर्म-सूचक सूक्त हैं — १।२९; ३।३; ६।९७ आदि।

६. भैषज्यवेद — विविध औषधोंका प्रतिपादन ही इस नामका कारण है। अथर्ववेदमें भैषज्यके लिए द्रष्टव्य सूक्त — २।३; ४।४; ६।१६, २१, ९२, ८३, ९६; ७।९६ आदि हैं।

अथर्ववेदकी शाखाएँ

महर्षि पतञ्जलिके मतमें अथर्ववेदकी नौ शाखाएँ हैं — "नवधाथर्वणो वेदः" (महाभा० पस्पशा०)। इन नौ शाखाओंके नाम विवाद-ग्रस्त हैं। सायणोल्लिखित नाम हैं — (१) पैप्पलादाः, (२) तौदाः, (३) मौदाः, (४) शौनकीयाः, (५) जाजलाः, (६) जलदाः, (७) ब्रह्मवदाः, (८) देवदर्शाः, (९) चारणवैद्याः। मुक्तिकोपनिषद्में पन्द्रह शाखाएँ बताई हैं। परन्तु इस समय पैप्पलाद और शौनकीय दो ही प्राप्य हैं। उनमें भी पैप्पलाद-शाखा-संहिता मुद्रित नहीं। पण्डित भगवद्दत्तने लिखा है — एक प्रति पूना भण्डारकर इंस्टाट्यूटमें सुरक्षित* है"। महाशय आउफ्रेक्ट

* Descriptive Catalogue of the Govt. Collection of Mss. Deccan College Poona, 1916, P. 276-77.

(Theodor Aufrecht) ने भी अपना १८९६ ई० में प्रकाशित द्वितीयभाग सूचीके पृ० २ पर लिखा है— अथर्ववेद संहिता— Paippaladacakha. Bhau Daji 109. Stein × 3 अर्थात् भाऊ दाजी-स्मारक पुस्तकालय (बम्बई) की तथा जम्बूकी सूचीमें पैप्पलादशाखा है।

शौनकीय संहिता—मुद्रित है। इसे सबसे पहले ह्विट्ने (W. D. Whitney) महोदयने बर्लिनसे १८५६ ई० में प्रकाशित किया था। बम्बई आदिसे इसके कई संस्करण सायणभाष्य-सहित निकल चुके है। अंग्रेजीमें तो प्रक्रिय-अनुवाद है ही; हिन्दीमें भी क्षेमकरणदास त्रिवेदीने अनुवाद किया है। अभी हालमें पं० सातवलेकरने हिन्दीमें सुन्दर अथर्ववेदका सुबोध भाष्य निकाला है। हाँ! इस स्वाध्यायके बहुतसे अर्थ सायणभाष्यमें मेल नहीं खाते। शौनकीय संहितामें २० काण्ड, ३६ (मतान्तरमें ३४) प्रपाठक, ७३० (मतान्तरमें ७६०) सूक्त, ५९७७ (मतान्तरमें ६०००,५८४७) मन्त्र है।

इस संहिताके लगभग १२०० मन्त्र ऋग्वेद-संहिताके विशेषत. प्रथम, अष्टम और दशम मण्डलमें पाये जाते है। बीसवें काण्डके प्रायः समग्र मन्त्र ऋग्वेदके ही है। कुछ लोग बीसवें काण्डको परिशिष्ट मानते हैं इस संहिताके एकसे तेरह काण्ड तक

× M. A Stein—द्वारा सम्पादित महाराजा जम्बूकश्मीरके रघुनाथ-मन्दिर-पुस्तकालयकी सूचिमें।

विस्कल्ति विषय हैं। जैसे:—ईश्वर-प्रार्थना, प्रेत दिसे-रक्षा, जादू-टोना, सर्प सिंहादिसे-रक्षा, सन्तति-रक्षा, गन्धू-रक्षा, विशेष विशेष औषध, मारण, मोहन उच्चाटन, वशीकरणादि प्रयोग, सर्व विध व्यवहार-साफल्यके उपाय, शान्ति आदि-आदि। चौदहवें काण्डमें विवाह पद्धति, पन्द्रहवेंमें अध्यात्म विद्या, सोलहवेंमें दुःख, दुःस्वप्नादि-मोचन-मन्त्र, सत्तरहवेंमें अभ्युदय-प्रार्थना, अठारहवेंमें पितृमेध, उन्नीसवेंमें यज्ञ, जल, अग्नि, राजा, नक्षत्र, शान्ति — सम्बन्धि मन्त्र और वीसवेंमें इन्द्र-सूक्त हैं।

अथर्ववेदके उपवेद

चरणव्यूहमें प्रत्येक वेदका एक उपवेद बताया है — "तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो भवन्ति। ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदो, अथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह भगवान् व्यासः" (खं० ४)। अर्थात् चारों वेदोंके चार उपवेद होते हैं — ऋग्वेदका 'आयुर्वेद', यजुर्वेदका 'धनुर्वेद', सामवेदका 'गान्धर्ववेद' और अथर्ववेदका 'अर्थशास्त्र' उपवेद है। परन्तु सुश्रुतादि, आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद बताते हैं — "इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्ग-मथर्ववेदस्य" (सुश्रुतसूत्रस्थान, १ अध्याय)। गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेदके पाँच उपवेद कहता है — 'पञ्चवेदान्निरमिमीत सर्पवेदं, पिशाचवेदम्, असुरवेदम्, इतिहासवेदं चेति" (गो० १।१०) इनमेंसे केवल इतिहासपुराण ही शेष है।

अथर्ववेदका ब्राह्मण

'गोपथ ब्राह्मण' अथर्ववेदका प्रसिद्ध ब्राह्मण है। पूर्व और उत्तर दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें ५ प्रपाठक तथा उत्तर भागमें ६ प्रपाठक हैं। आथर्वण चरणव्यूहसे प्रमाणित होता है कि गोपथमें कभी १०० प्रपाठक थे—"तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति" (४।५)। अर्थात् गोपथ पहले १०० प्रपाठकोंका ब्राह्मण था। अब पूर्व और उत्तर दो ही ब्राह्मण शेष हैं। संहिता-मन्त्रोंकी व्याख्यारूप गाथाएँ इसमें अधिक आती हैं। विपाशा-तीर-वर्ति रमणीय वसिष्ठाश्रमका सुन्दर वर्णन है। व्याकरण महाभाष्यका प्रसिद्धश्लोक—सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु, यन्नव्येति तदव्ययम्॥ (व्या.महा.भा. १।१।२८) इस ब्राह्मणके पूर्वभाग १।२६में मिलता है। इस ब्राह्मणका सम्पादन बड़ी योग्यतासे गास्ट्रा (D. Gaastra) महोदयने 'लेडन' नगरमें १९१९ ई० में किया था। उससे भी पहले हरचन्द्रविद्या भूषणने १८७० ई० में कलकत्तासे प्रकाशित किया था। क्षेमकरण त्रिवेदीका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित है।

अथर्ववेदीय उपनिषदें

मुक्तिकोपनिषद्में ३१ उपनिषदें परिगणित हैं। उनमें प्रसिद्ध 'प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, नृसिंहतापिनी'—ये चार हैं। इनके उद्धरण ब्रह्मसूत्रमें अधिक आते हैं। माण्डूक्यकी गणना कुछ विद्वान्

अथर्व — उपनिषदोंमें नहीं करते। पैप्पलादोपनिषद्+ भी आउफ्रेक्ट-सूची में है।

अथर्ववेदके सूत्रग्रन्थ

गोपथ ब्राह्मणके आधार पर पाँच सूत्रग्रन्थ बने हैं — (१) कौशिक (संहिता-विधि) सूत्र, (२) वैतानसूत्र, (३) नक्षत्र कल्पसूत्र, (४) अङ्गिरस कल्पसूत्र, (५) शान्ति कल्पसूत्र।

१. **कौशिकसूत्र** — दर्श-पूर्णमास-विधि, मेधा-वर्धन, ब्रह्मचर्य, ग्राम-नगर-राष्ट्रादि रक्षण, ऐहिक पारलौकिक फल-सम्पादन प्रकार, ऐकमत्यादि विषय कौशिकसूत्रमें वर्णित हैं। सन् १८९० में ब्लूमफील्ड (M. Bloomfield) ने जर्मनीसे प्रकाशित किया था।

२. **वैतान सूत्र** — इसमें होता ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, अग्नीध्र — इन चारोंके अयनान्त कर्म-कर्तव्य उपदिष्ट हैं। इसके दो संस्करण जर्मनीसे निकले हैं — एक गार्बे (R. garbe) — द्वारा सम्पादित उपयोगी सूचि और टिप्पणी-सहित १८७८ ई० में और दूसरा कालण्ड (W. caland) का जर्मन अनुवाद।

३. **नक्षत्र कल्पसूत्र** — नक्षत्र-पूजन, महाशान्ति, नैर्ऋतकर्मादिका निरूपक है।

+ पैप्पलादोपनिषद् Gov. or. Libr. Madras 52, and Calcutta Sanskrit College.

४. अङ्गिरस कल्पमें — अभि चार (शत्रुवधादि) कर्म-प्रयोके समय कर्ता और कारयिताकी आत्म-रक्षा सरणी वर्णित है।

५. शान्ति कल्पसूत्र — इसमे ग्रह उपद्रव शान्तिका विधि-विधान है।

अथर्व वेदके परिशिष्टादि

अथर्ववेदके ७०–७४ छोटे छोटे परिशिष्ट हैं, जिनमें अथर्ववेदोक्त विविध मन्त्र, शकुन, टोटके, यन्त्रादिका वर्णन है। इनका सम्पादन जर्मनीमें वालिग और नगल्नि (G M Bolling and I V Negelein)ने १९१० ई० में किया है। इनके अतिरिक्त 'बृहत् सर्वानुक्रमणी*' और चरणव्यूह, अथर्ववेद प्रातिशाख्य × पञ्चपटलिकादि ग्रन्थ मुद्रित हैं; जिनसे अथर्ववेदके विषय जाने जाते हैं। अथर्ववेदका यही स्वल्प परिचय है। अन्तमें कुछ उपलब्ध शाखाओंका साहित्य विवरण (जिससे ज्ञात होगा कि किस शाखाका कौन अंश उपलब्ध है) देकर द्वितीय सोपानको समाप्त करते हैं—

* 'बृहत्सर्वानुक्रमणी' — सम्पादक — रामगोपाल शा० और प० भगवद्दत्त। सन् १९२२

× क–अथर्ववेद प्रातिशाख्य — सम्पादक — Whitney विरल भाष्य अंग्रे० अनुवाद — सहित।

ख–V B Shastri

† पञ्चपटलिका (अथर्ववेद तृतीय लक्षण ग्रन्थ) — सम्पादक प० भगवद्दत्त।

उपलब्ध शाखा-साहित्य

शाखा	वेद	संहिता	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद्	श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र
१. शाकल०	ऋग्वेद	शाकल०	कौषीतकि०	कौषी०	कौ०	—	—
२. आश्वलायन०	,,	—	ऐतरेय०	—	ऐतरेय	आश्वला०	आश्वल०
३. शांखायन०	,,	—	शांखायन०	शांखायन०	शां०	शांखायन०	शांखा०
४. बाष्कल०	,,	बाष्कल०	—	—	—	—	—
५. कठ०	यजुर्वेद	काठक०	—	—	कठ०	—	काठक०
६. मैत्रायणी०	,,	मैत्रायणी	—	—	मैत्रायणी	—	—
७. मानव	,,	—	—	—	—	मानव०	मानव०
८. वाराह०	,,	—	—	—	—	—	वाराह०
९. तैत्तिरीय(आपस्तम्ब०)		तैत्तिरीय०	तैत्तिरीय०	तैत्तिरीय०	तैत्ति०	आपस्तम्ब०	आप०
१०. बौधायन०	,,	—	—	—	—	बौधायन०	बौधा०
११. हिरण्यकेशीय०	,,	—	—	—	—	हिरण्यके०	हिरण्य०

१२. भारद्वाज०	,,	—	—	—	—	भारद्वाज०	—
१३. माध्यन्दिन०	,,	वाजसनेयी०	मध्य०शतपथ०	मा०बृहदारण्यक	बृह०,ईशा०	कात्यायन०	पारा०
१४. कण्व०	,,	कण्व०	कण्वशतपथ०	कण्वबृहदारण्यक	बृह०,ईशा०	,,	,,
१५. वैखानस०	,,	—	—	—	—	वैखानस०	वैखा०
१६. कपिष्ठलकठ०	,,	कपिष्ठलकठ०	—	—	—	—	—
१७. कौथुम०	सामवेद	कौथुम०	ताण्ड्यमहा०,साम	आरण्यक	छान्दोग्य	लाट्या०	गोभि०
१८. राणायनीय०	,,	राणायनीय०	,, ,,	—	—	द्राह्यायण०	खादिर०
१९. जैमिनीय०	,,	जैमिनीय०	जैमिनीय०	—	केन०	जैमि०	जैमि०
२०. पैप्पलाद०	अथर्ववेद	पैप्पलाद	—	—	पैप्पलाद	—	—
२१. शौनक	,,	शौनक	गोपथ	—	मु०,मा०,प्रश्नादि०	वैतान०	कौशिक०





तृतीय सोपान

मंत्र—शिक्षा

(१) मन्त्रो गुरुः

१ — यो नो अग्ने अररिवाँ
अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा
अनु मृक्षीष्ट तन्वं द्विरुक्तैः ॥ (ऋ० १।१४७।४)

अर्थ — (अग्ने) हे अग्निरूप परमात्मन् ! (यो अररिवान्) जो दान धर्मका कट्टर विरोधी, (अरातीवा) स्वयं अ-दानी, (अघायु॰) पापाचार पुरुष (द्वयेन) मन, वाणी-दोनोंसे (नः मर्चयति) हमें कोसता, अपमानित करता रहता है। (मन्त्रः) भगवान् वेद (अस्मै) उस पापकर्मा मनुष्यका (गुरुः अस्तु) शिक्षक = सुमति-दाता हो। (स पुन॰) और वह पापिष्ठ पुरुष (द्विरुक्तैः) सत्पुरुषोंकी कटूक्तियोंसे कुमार्ग त्याग कर (तन्वम्) अपने दूषित शरीरको अघमर्षण-जपादि-द्वारा (अनुमृक्षीष्ट) शुद्ध कर ले।

(२) स्वस्ति पथ-कामना

२ — स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥
(ऋ० ५।५१।१५)

अर्थ—हे ईश ! हम (सूर्याचन्द्रमसाविव) सूर्य चन्द्रकी भाँति (स्वस्ति पन्थाम्) कल्याण-पथ पर (अनुचरेम) अग्रस‍ हों। और (पुनः ददता) अनन्त दानशील, (अघ्नता) अहिंसक तथा (जानता) सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञस्वरूप तेरे साथ (संगमेमहि) निरन्तर जुड़े रहें।

३—अग्ने नय सुपथा राये अस्मा-
न्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नमउक्तिं विधेम ॥ (ऋ० १।१८९।१)

अर्थ—(अग्ने) हे सर्वाग्रणी परमेश्वर ! (अस्मान्) हम सबोंको (राये) ऐहिक एवं पारलौकिक सम्पत् प्राप्त करानेके लिए (सुपथा) सुपथ पर (नय) चला। (देव) हे देवाधिदेव ! तू हमारे (विश्वानि) समस्त (वयुनानि विद्वान्) सङ्कल्पों और कर्तव्योंका जानकार है। (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम् एनः) अनिष्टकारि पाप पुञ्जको (युयोधि) दूर कर। हम (ते) तेरी (भूयिष्ठाम्) बहुत बड़ी (नमउक्तिम्) स्तुति (विधेम) करते हैं।

४—सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्र-
वन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ (ऋ० १०।६३।१०)

अर्थ—(सुत्रामाणम्) संसार पारावारसे पार करनेवाली (पृथिवीम्) पृथिवी जैसी लम्बी चौड़ी, (द्याम्) प्रकाशवती, (अनागसम्) निर्मल, (सुशर्माणम्) सुख-साधनोंसे भरपूर, (अदितिम्)

अखण्डित, (सुप्रणीतिम्) सुसंघटित, (स्वरित्राम्) दृढ़ डाँड़ोंवाली, (अनागसम्) निश्छिद्र, (अस्रवन्तीम्) न चूनेवाली (दैवीं नावम्) दिव्य नौका पर (स्वस्तये) परम पद प्राप्त करनेके लिए (आरुहेम) हम चढ़ते हैं।

(३) श्रद्धा

५—श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥

(ऋ० १०।१५१।५)

अर्थ—हम (श्रद्धाम्) श्रद्धादेवीको (प्रातः मध्यन्दिनं) प्रातः मध्याह्न और (सूर्यस्य निम्रुचि) सायं (हवामहे) आवाहन करते हैं—(श्रद्धे) हे श्रद्धे! (इह) वेदों तथा वैदिक कर्मोंका (नः श्रद्धापय) हमें श्रद्धालु बना।

(४) ब्रह्मचर्य–महिमा

६—ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

(अथर्व० ११।७।१७)

अर्थ—(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य* रूपी तप-द्वारा (राजा राष्ट्रं विरक्षति) राजा राष्ट्रकी खूब रक्षा करता है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही ब्रह्मचारी (आचार्यः) आचार्य बनकर अन्य ब्रह्मचारियोंके अपनी शरणमें आनेकी इच्छा करता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य-नियमोंमें स्थित आचार्यका ही हितकर सान्निध्य ब्रह्मचारियोंको रुचता है।

* "ब्रह्म = वेदस्तदध्ययनार्थं यर्द् ब्रह्मचारिभिरनुष्ठेयमुपनयनादि कर्म — ब्रह्मचर्यम्" (सायण०)।

७—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥
(अथर्व० ११।७।१९)

अर्थ — (ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य-तपका ही प्रभाव है — कि (देवाः) देव (मृत्युमुपाघ्नत) मृत्युको मार, अमर बन गये। (इन्द्रो ह) देव-राज इन्द्र भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य-साधन से ही (देवेभ्यः) देवोंके लिए (स्वराभरत्) स्वर्गका रक्षण करता है।

(७) ऋणोद्धार

८—अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्
तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥
(अथर्व० ६।११७।३)

अर्थ — हे ईश! हम (अस्मिन् लोके अनृणा) इस लोकमें ऋणी न रहें, (परस्मिन् अनृणाः) परलोकमें भी ऋण-मुक्त हों और (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) नाक-पृष्ठादि तृतीय लोकमें भी ऋण-रहित हों। (ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः) जो देव-यान और पितृ-यान के लोक हैं, (सर्वान् पथः अनृणाः आक्षियेम) उन सब लोकोंमें अनृण होकर हम निवास करें। यहाँ लौकिक वैदिक—दोनों ऋणोंसे मुक्त होनेकी प्रार्थना है। लौकिक ऋण प्रसिद्ध ही है। वैदिक ऋण तीन हैं—'ऋषि-ऋण,' 'देव-ऋण,' 'पितृ-ऋण'। स्वाध्याय से 'ऋषि-ऋण,'

अर्थ — (अश्विना) हे अश्विदेवो ! (संज्ञानं नः स्वेभिः) हमारा ऐकमत्य स्वजनोंके साथ (संज्ञानम् अरणेभिः+) परजनोंके साथ तथा (अस्मासु) हमारे इस परिवारमें (युवं नियच्छतम) आप सदा बनाये रखें ।

१४ — प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ॥
(अथर्व० १९।६२।१)

अर्थ — हे प्रभो ! (प्रियं मा कृणु देवेषु) मुझे देवोंका कृपा-पात्र बना, (प्रिय सर्वस्य पश्यतः) सब तत्वदर्शी - ब्राह्मणोंका प्रेमी बना । (उत शूद्रे उत आर्ये) क्या शूद्र? क्या वैश्य? सब प्राणियोंमें मेरा अनन्य प्रेम बढ़ा ।

(७) मधुर जीवन

१५ — सहृदयं सांमनस्यमद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
(अथर्व० ३।३०।१)

अर्थ — गृहस्थ-जीवन-पथके पथिको ! (वः सहृदयं सांमनस्यम् अद्वेषं कृणोमि) मैं तुम्हारा जीवन सहृदयता, सहानुभूति और निर्वैरता पर अवलम्बित करता हूँ । तुम सब (अन्योअन्यम् अभिहर्यत[१]) परस्पर वह प्रेम अपनाओ (अघ्न्या[२] जात वत्सम् इव) जो प्रेम गो का अपने नव-जात बछड़े पर होता है ।

+ अरणः = न रणः = शब्दप्रमाणं यस्य सोऽवैदिकः परः ।

१. "हर्य गतिकान्त्योः" भ्वा० परस्मै० । २. न हन्यते इत्यघ्न्या=गौः ।

१६ — अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु समनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥
(अथर्व० ३।३०।२)

अर्थ — (पुत्र पितु अनुव्रत) पुत्र पिताका आज्ञाकारी हो (मात्रा समना भवतु) और माताके साथ एक-मत । (जाया पत्ये) पत्नी पतिसे (मधुमतीं शान्तिवां[1] वाचं वदतु) मधुमय शीतल वाणी बोले ।

१७ — मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥
(अथर्व० ३।३०।३)

अर्थ — (मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत्) न भाई, भाईसे द्वेष करे (उत मा स्वसा स्वसारम्) और न बहन, बहनसे । भाइयो तथा बहनो ! तुम सब (सम्यञ्च[2] सव्रता भूत्वा) एक-मत और एक-मत हो (भद्रया वाचं वदत) परस्पर भद्र वाणीका प्रयोग करो ।

१८ — येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
(अथर्व० ३।३०।४)

अर्थ — (येन) जिस वेदकी विद्याके प्रभावसे (देवा न वियन्ति) देवताओंमें न विरोध रहता है और (नो विद्विषते[3]

---

१ "शान्त्वाम्०" — इति शमशब्दात् तिप्रत्यय, तना मत्वर्थीया च ।

२ समुपूर्वाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्" — इत्यादिना क्विन्, "समः समि" इति समयादेश ।

३ "द्विष अप्रीतौ" अदादि, उभय०

नियः) न पारस्परिक द्वेष। (तत् संज्ञानं ब्रह्म) उसी एकताके शिक्षक वेदको (वः गृहे पुरुषेभ्यः कृण्मः) तुम्हारे घरमें सब पुरुषोंको एकता-सूत्रमें बाँधनेके लिए हम नियत करते हैं।

१९—ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि
यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त
एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
(अथर्व० ३।३०।५)

अर्थ—(ज्यायस्वन्तः) बड़े-छोटेकी मर्यादा पालते हुए (चित्तिनः) उदारचेता बन कर (संराधयन्तः) पारस्परिक कार्य-साधन करते हुए (सधुराः चरन्तः) कन्धे-से-कन्धा भिड़ाए चले चलो (मा वियौष्ट*) सावधान! कहीं बिछुड़ न जाना। (अन्यो अन्यस्मै) एक दूसरे से (वल्गु वदन्तः) प्रेमालाप करते हुए (एत) बढ़े चलो। मैं भी (वः) तुम्हें (सध्रीचीनान्) एक पथ पर चलाता और (संमनसः कृणोमि) तुम्हारे मनोंको मिलाता हूँ।

२०—जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥

२१—मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥
(अथर्व० १।३४।२,३)

---

† "हृवि हिंसाकरणयोश्च"। "धिन्विकृण्व्योर च" इत्यकारोऽन्तादेश उकारश्च। "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः।

* "यु मिश्रणामिश्रणयोः" लिङ्मध्यमात् माङि लुङि मध्यमबहुवचने रूपम्। छन्दस्यडागमाभावः।

अर्थ—हे मधुरते! (जिह्वाया अग्रे मधु) मेरे जिह्वाग्र में तू मधु और (मे जिह्वामूले मधूलकम्) मेरी जिह्वाके मूलमें रसाल-रस बनजा। (मम इद् अह क्रतौ असः) मेरे जीवन-व्यवहारमें समा जा और (मम चित्तमुपायसि) मेरे मनमें सदा निवास कर; जिससे (मधुमन्मे निक्रमण मधुमन्मे परायणम्) मेरी प्रवृत्ति और निवृत्ति मधुर बन जाय। (वाचा मधुमद् वदामि) वाणीसे मधुर बोलूँ तथा (भूयासं मधुसंदृशः) बन जाऊं मधु-संदर्शी।

२२—समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः॥ (अथर्व० ३।३०।६)

अर्थ—एक परिवारके सदस्यो! (वः) तुम्हारी (समानी प्रपा) एक ही पानीय शाला और (सह अन्नभागः) एक ही रसोई हो। मैं (व समाने योक्त्रे सह युनज्मि) तुम सबको एक ही स्नेह-बन्धनमें बाँधता हूँ। (अरा नाभिम् अभित इव) जैसे एक ही चक्र-नाभि में बहुत-से अरे जुड़े रहते हैं; वैसे ही (सम्यंच.) सब मिले-मिलाप (अग्निं सपर्यत +) प्रभुकी पूजा करो।

२३—सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्ये
कश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः
सौमनसो वो अस्तु॥ (अथर्व० ३।३०।७)

+ "सपर पूजायाम्। भ्वादितवादि यङ्।

अर्थ—(सवनेन) सच्चे सेवा-भाव-पूर्वक (वः सर्वान्) तुम सबको (सध्रीचीनान्) साथ-साथ रहनेवाले, (संमनसः) सुहृद्, (एकश्नुष्टीन्) समान भोजी (कृणोमि) करता हूँ। (अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव) अमृत-रक्षक देवोंके समान (सायंप्रातः) साँझ-सवेरे (वः सौमनसः अस्तु) तुम्हारे मन नितान्त पवित्र रहें।

(८) आदर्श जीवन

२४ — सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु-
स्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ऋ० (०।५।६)

अर्थ—(कवयः) महर्षियोंने (सप्त मर्यादाः) सात अस्पृश्य मर्यादाएँ (ततक्षुः) बनाई हैं। (तासाम् एकाम् इत्) उनमेंसे एक मर्यादाका भी जो (अभिगात्) स्पर्श करता है; वह (अहुरः) असुर = दुराचारी कहा जाता है। परन्तु जो (धरुणेषु) धारणीय नियमोंमें (तस्थौ) स्थित रहता है; वह (आयोः ह स्कम्भः) उच्च जीवनका स्तम्भ = आदर्श होता है। ऐसा ही महापुरुष (पथां विसर्गे) जीवन-धारा-पथोंके पर्यवसान महासागर-रूप, (उपमस्य नीळे) सर्व ज्ञेय जगत्-उपनिर्माता जीव पक्षीके नीड़ = ब्रह्म धाम तक पहुँचता है।

(९) द्यूत निन्दा

२५ — न मा मिमेथ न जिहीळ एषा
शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-
रनुव्रतामप जायामरोधम् ॥ (ऋ० १०।३४।२)

अर्थ—जुआरी अपनी दुर्मति पर रोता है—(एषा) यह मेरी स्त्री जो (मा) मुझे (न मिमेथ) कभी भी कष्ट नहीं पहुँचाती थी, (न जिहीळ) न कभी क्रोध ही करती थी; प्रत्युत (सखिभ्य उत मह्यम्) मेरे मित्रोंके और मेरे लिए (शिवा आसीत्) सुख-शान्तिका एक साधन थी। परन्तु हा दैव! (अहम्) मैं (एकपरस्य) एकमात्र (अक्षस्य हेतोः) इस जुएके कारण अपनी उस (अनुव्रताम्) पतिपरायणा (जाया) पत्नीको (अप अरोधम्) खो बैठा।

२६—द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥
(ऋ० १० ३४।३)

अर्थ—(श्वश्रू द्वेष्टि) मेरी सास मुझसे द्वेष करने लग गई है, (जाया अपरुणद्धि) धर्मपत्नीने अवरोध लगा रखा है। (न नाथितो विन्दते मर्डितारम्) माँगने पर भी एक कौड़ी तक देनेवाला नहीं मिलता। (वस्न्यस्य जरतः अश्वस्य इव) भाड़ेके बूढ़े टट्टूकी तरह (कितवस्य भोगं न विन्दामि) अपने मनोनीत भोगोंसे वञ्चित रह रहा हूँ।

२७—जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो
ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति॥
(ऋ० १०।३४।१०)

अर्थ — (कितवस्य हीना जाया तप्यते) जुएबाज़की स्त्री दीन-हीन हो संतप्त रहती है। (क्वस्वित् चरतः पुत्रस्य माता) इधर-उधर मारे-मारे फिरनेवाले जुआरी पुत्रकी माताके दुःखोंकी तो सीमा ही नहीं रहती। (ऋणावा) कर्ज़से लदा हुआ स्वयं (बिभ्यत्) सदा डरता ही रहता है और (धनम् इच्छमानः) धनकी इच्छासे (नक्तम्) रातके समय (अन्येषाम् अस्तम् उप एति) दूसरोंके घरोंमें चोरी करनेके लिए पहुँचता है।

२८ — अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥(ऋ० १०।३४।१३)

अर्थ — (कितव) हे कितव! (अक्षैर्मा दीव्यः) जुआ मत खेल (कृषिम् इत् कृषस्व) खेती अवश्य कर; (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) अपने थोड़े धनको बहुत समझ, उसमें ही सन्तोष कर। (तत्र) उस खेती पर (गावः) गौएँ पलेंगी और (तत्र जाया) उसमें ही पत्नी प्रसन्न रहेगी — यह (तत्) धर्म-रहस्य (मे) मुझसे (अयं सविता) इस सर्व-साक्षी जगद् रचयिता (अर्यः) परमेश्वरने (विचष्टे) कहा है।

(१०) उदारता

२९ — तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा
बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा
ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥
(ऋ० ५।४२।८)

अर्थ — (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (तव ऊतिभिः सचमानाः) तेरे कृपा-पात्र सत्पुरुष (अरिषः मघवानः सुवीराः) दुःखोंसे रहित, धनवान् और पुत्रों पौत्रोंवाले होते हैं। (ये अश्वदाः गोदाः उत वा ये वस्त्रदाः सन्ति) जो घोड़ों गौओं और वस्त्रोंका दान करनेवाले हैं; (तेषु सुभगाः रायः) उनमें सौभाग्य तथा विभव सदा विहार किया करते हैं।

३० — अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥
(अथर्व० ९।५।२९)

अर्थ — जो (अनुपूर्ववत्सां धेनुम) प्रतिवर्ष बछड़ा देनेवाली गौका, (अनड्वाहम्) बैलका और (उपबर्हण वासः हिरण्यम्) तकिया, वस्त्र तथा सुवर्णका (दत्त्वा) दान करते हैं; (ते उत्तमां दिवं यन्ति) वे उत्तम दिव्य गतिको पाया करते हैं।

(११) पापी केवलादी

३१ — मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ॥
(ऋ० १०।११७।६)

अर्थ — (अप्रचेताः) दान-बुद्धि-शून्य पुरुष (मोघम्) निरर्थक ही (अन्नं विन्दते) अन्न सञ्चित करता रहता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (सः) वह व्यवहार (तस्य) उस कृपण मानवका (वध इत्) मरण ही है। क्योंकि (नार्यमणम्) वह न तो 'अर्यमा' आदि देवोंका और

(नो सखायम्) न मित्रोंका ही (पुष्यति) पोषण करता है। ऐसा (केवलादी केवलाघो भवति) केवल अपना ही पेट भरनेवाला निरा पापी होता है।

(१२) दिव्य राष्ट्र-निर्माण

३२—आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतमा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।

(यजु० २२।२२)

अर्थ—(ब्रह्मन्) हे ब्रह्मन् (राष्ट्रे ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी आजायताम्) हमारे राष्ट्रमें तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों। (राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्) शूर, धनुर्धर, वैरि-विनाशी और महारथी क्षत्रिय पैदा हों। (दोग्ध्री धेनुः) दुधारी गौएँ, (वोढा अनड्वान्) बली बैल, (आशु सप्तिः) चपल तुरङ्गम और (पुरन्धिः योषा) कुशल सुडौल बालाएँ उत्पन्न हों। (जिष्णुः रथेष्ठाः) विजेता रथी, (सभेयो युवा) सभ्य युवक (अस्य यजमानस्य वीरो जायताम्) इस यजन-शील पुरुषके वीर पुत्र उत्पन्न हों। (निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु) समय-समय पर देव वर्षा करे। (न ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी खेती खूब फलें-फूलें और पकें; जिससे (योगक्षेमो नः कल्पताम्) हमारे राष्ट्रका योग-क्षेम होता रहे।

३३—भद्रमिच्छन्त ऋषयः
स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उप सं नमन्तु ॥
(अथर्व० १९।४१।१)

अर्थ—(अग्रे) पहले (भद्रमिच्छन्तः) राष्ट्रका भला चाहते हुए (स्वर्विदः ऋषयः) स्वातन्त्र्य-सुख वेत्ता महर्षियोंने (तपो दीक्षामुपनिषेदुः) महान तप और अनन्त बलि-दान किए (ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम्) तब कहीं राष्ट्र, बल और ओजकी प्राप्ति हुई। (तदस्मै देवा उप सं नमन्तु) इस लिए देव-तुल्य मनीषियोंका कर्तव्य है कि इस राष्ट्रके सम्मान एवं रक्षणमें प्राणोंकी बाज़ी लगाएँ।

(१३) गो माता

३४—आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्
त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्यु-
रिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥
(ऋ०-६।२८।१)

अर्थ—(गावः) गौवें (आ अग्मन्) हमारे घरमें आवें (उत) और (भद्रम् अक्रन्) हमारा भला करें। (गोष्ठे) गो-शालामें (सीदन्तु) बैठें और (अस्मे रणयन्तु) हमें मधुर शब्दोंसे बुलावें (इह) इस गोष्ठमें (पुरुरूपा) अनेक रंगोंवाली, (प्रजावत्यः) सन्तान-युक्त (पूर्वीः) बहुत गौएँ (इन्द्राय) स्वामीके लिए (उषसः) सायं-प्रातः (दुहानाः) दूध देती रहें।

३५ — न ता नशन्ति न दभाति तस्करो
नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च
ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥

(ऋ० ६।२८।३)

अर्थ — हे परेश ! (ता.) वे गौयें (न नशन्ति) कभी नष्ट न हों, (तस्करो न दभाति) न चोर चुरा सके और (न अमित्रो व्यथिः) न शत्रु-शस्त्र (आसाम्) इनका (दधर्षति) कुछ बिगाड़ सके । (गोपतिः) गो-स्वामी यजमान (याभिः देवान् यजति) जिन गौओंके दान से देवोंकी पूजा करता है, (ताभिः सह) उन गौओंके सहित (ज्योग् इत) बहुत दिनों तक (सचते) विराजमान रहे ।

३६ — यूयं गावो मेदयथा कृशं चि-
दश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो
बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥

(ऋ० ६।२८।६)

अर्थ — (गावः) हे गोमाताओ ! (यूयं कृशं चिद् आ मेदयथ) तुम दुबले-पतलेको भी मोटा-ताजा बना देती हो और (अश्रीरं चिद्) फ़टहड़को भी (सुप्रतीकम्) दर्शनीय बनाती हो। (भद्रवाचः) हे मङ्गल नाद-युक्त गोमाताओ ! (गृहं भद्रं कृणुथ) हमारे घरोंको मङ्गलमय बना दो। (सभासु) बड़ी-बड़ी सभाओंमें (वो बृहद्वयः उच्यते) तुम्हारे दूधसे ही लोगोंका सत्कार किया जाता है ।

३७ — प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः
शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥
(ऋ० ६।२८।७)

अर्थ — हे गोमाताओ ! तुम (प्रजावती) सन्तति-युक्त हो (सूयवसम् रिशन्तीः) सुन्दर चारा चरती रहो और (सुप्रपाणे शुद्धा अपः पिबन्तीः) सुन्दर जलाशयोंमें शुद्ध जल पीती रहो । (वः) तुम्हें (स्तेन मा ईशत) न चोर चुरासके (मा अघ शंसः) न हिंसक मारसके । (वः) तुमको (रुद्रस्य हेतिः) महाकालकी तलवार भी (परिवृज्याः) छोड़ दे ।

३८ — माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥
(ऋ० ८।१०१।१५)

अर्थ — जो गौ (रुद्राणां माता) रुद्रोंकी माता, (वसूनां दुहिता) वसुओंकी पुत्री, (आदित्यानां स्वसा) आदित्योंकी बहन और (अमृतस्य नाभिः) अमृत-धाराका उद्गम है । (चिकितुषे जनाय) मनीषी जनोंको (प्रनुवोचम्) मैं सावधान किये देता हूँ कि ऐसी (अनागाम्) निष्पाप (अदितिं गाम्) अहिंसनीय गोमाताको (मा वधिष्ट) कोई मत मारने पावे ।

३९ — वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं
विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।

देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गा-
मा मा वृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥
(ऋ० ८।१०१।१६)

अर्थ — (वचोविदं वाचमुदीरयन्तीम्) अपने स्वामीके परिचित आह्वान-शब्दको रम्भा कर उत्तर देनेवाली, (विश्वाभिः धीभिः उपतिष्ठमानाम्) अपनी पूरी सूझ-बूझके साथ-मालिकके समीप आकर खड़ी होजानेवाली (देवेभ्यः परि आ ईयुषीम्) दैवी प्रवृत्तियोंके लिए अपनेको जाननेवाली (देवीं गाम) गो माताको (दभ्रचेताः) अल्पबुद्धि (मर्त्यः) मनुष्य (आ वृक्त) न मारे।

(१४) आत्म-शोधन

४०—इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
यथैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥

४१—इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥

४२—इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि
मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥
(अथर्व० १९।९।३-५)

अर्थ — (इयं या परमेष्ठिनी ब्रह्मसंशिता वाग्देवी) यह जो ब्रह्म-वादिनी, मन्त्र-पूता वाग्देवी है; (यथैव घोरं ससृजे) जिससे घोर महाभारत रचे जा चुके हैं, (तयैव नः शान्तिरस्तु) अब उसीसे शान्तिकी प्रार्थना है। (इदं यत्परमेष्ठिनं ब्रह्मसंशितं वां मनः) यह ब्रह्म विचार-परायण, मन्त्र-संस्कृत जो तुम्हारा मन है; (येनैव ससृजे घोरम्) जिससे क्रूरतम विचार प्रकट किए जा चुके

हैं, (तेनैव न. शान्ति. अस्तु) वह अब हमें शान्ति दे। (इमानि) ये (यानि मन षष्ठानि पञ्च इन्द्रियाणि) जो पाँच इन्द्रिय और छठा मन-सभी (मे हृदि ब्रह्मणा शमितानि) मेरे हृदयमें मन्त्रोंसे शुद्ध किए गये हैं; (यैरेव ससृजे घोरम्) जिनसे भयङ्कर पाप अनुष्ठित हो चुके हैं, (तैरेव न शान्ति अस्तु) अब उनसे हमारा कल्याण हो।

(१५) उद्‌बोधन

४३—अश्मन्वती रीयते सं रभध्व-
मुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः
शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥
(ऋ० १०।५३।८)

अर्थ—(सखाय) मित्रो! (अश्मन्वती रीयत) अनन्त विपत्ति-पाषाणोंसे भरी हुई यह संसार नदी मतवाली होकर बह रही है। (उत्तिष्ठत) उठो, (सरभध्वम्) एक दूसरेका सहारा लेकर (प्रतरत) जोरसे तैरो। तैरनेसे पहले (ये अशेवा असन् अत्र जहाम) जो दुःख देनेवाले पदार्थ हैं, उन्हें इस पार ही छोड़ दें और (शिवान् वाजान् अभि वयम् उत्तरेम) तरण सहायक साधनोंको आगे रखकर हम सब पार हों।

(१६) तत्त्व-दर्शन

४४—नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भ किमासीद् गहनं गभीरम् ॥
(ऋ० १०।१२९।१)

अर्थ — (तदानीम्) प्रलयकालमें इस जगतका जो मूल था, उसे (न असद् आसीत्) न असत्=अलीक कह सकते थे और (नो सत्) न सत्। अर्थात् सद्, असद् — दोनोंसे विलक्षण अनिर्वचनीय तत्त्व था। (न आसीद् रजः) पातालादि लोक* भी उस समय न थे। (नो व्योम) न आकाश था और (न परः) न था परेका द्युलोक। उस समय (किम्) कौन आवरण (कस्य शर्मन्+) किसको सुख देनेके लिए (कुह) किस आधारमें (आवरीवः†) किस वस्तुको ढँकता? अर्थात् प्रलयमें न आवरणीय था, न आवरण और न उसका प्रयोजन था। (गहनं गभीरम् अम्भः किमासीत्) क्या गहन गम्भीर सलिल था? नहीं, यह भी न था×।

---

* निरुक्तमें रजः का अर्थ लोक किया है — "लोका रजांस्युच्यन्ते" (नि० ४।१९)

\+ "सुपां सुलुक्" (पा० सू० ७।१।३९) इति शर्मणो निमित्तसप्तम्या लुक्।

† वृणोतेर्यङ्लुगन्ताच्छान्दसो लङि तिपि रूपमेतत्।

× उक्त अर्थ सायण-भाष्यके अनुसार किया गया है। अन्य मनीषियोंका कहना है कि — "अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्" — इस चरणको छोड़ शेष मंत्रसे ही आवरण और आवरणीय पूर्ण विश्वका निषेध हो जाता है; फिर जलका पृथक् (चतुर्थचरणसे) निषेध करना व्यर्थ है। अतः चौथे पादका अर्थ यों करना चाहिए — (गहनम्) दुर्विज्ञेय (गभीरम्) अगाध (अम्भः) प्रपञ्च-निदान मायातत्त्व (किम्) कैसा (आसीत्) था? इसी आशयसे महर्षि वाल्मीकिने उक्त ऋचाका अनुवाद इस प्रकार किया है —

नाकस्तदासीन्न दिगन्तमासीद्,
अधोऽपि नासीन्न तदूर्ध्वमासीत्।
भूतं न चासीन्न च सर्गमासीद्,
आसीत्परं केवलमेव वारि ॥ (यो० वा० नि० उ० ५८।१८)

४५—न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राञ्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥
(ऋ० १०।१२९।१)

अर्थ—(तर्हि) तब (न मृत्युरासीत्) न मरना था, (अमृत न) न जीना, (न राञ्या अह्न. प्रकेत. आसीत्) न रात्री और दिनके विभागका ज्ञान ही था। हाँ! (तद् एकम्) वह एक आत्मतत्त्व (स्वधया) अपनी मायाशक्तिके साथ (अवातम्) प्राणोंके बिना ही (आनीत्) जीवित था। (तस्मादन्यत्) उससे भिन्न (ह) निश्चयसे (पर.) सृष्टि परवर्ति जगत् (किंचन) कुछ भी (न आस) न था।

४६—तम आसीत्तमसा गूढमग्रे
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥
(ऋ० १०।१२९।३)

अर्थ—(अग्रे) पहले (तमसा गूढम्) अज्ञान-तमसे घिरा हुआ (तमः) मूलतत्त्व था। (अप्रकेतम्) अज्ञातावस्थापन्न (इद सर्वम्) यह सब जगत् (सलिलम्) दूधमें मिले पानीकी तरह मिलमें लीन (आः*) था। (यत्) जो (आभु) भावि-

* आः=अस्तेर्लङि तिपि "बहुलम्" तीडभावे "हल्ङ्याब्भ्य" इति तिलोपे "तिप्यनस्ते" रितिपर्युदासादीकाराभावः ।

भवनशील जगत् (तुच्छ्येन) मिथ्या मायासे (अपिहितम्) आच्छादित, (एकम्) कारण मात्र स्वरूप (आसीत्) था। (तत्) वह जगत् (तपसः) 'बहुस्यां प्रजायेय'—इस संकल्पके (महिना) माहात्म्यसे (अजायत) प्रादुर्भूत हुआ।

४७—कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥
(ऋ० १०।१२९।४)

अर्थ—(अग्रे) प्रारम्भमें (मनसः अधि) माया विलीन जीवोंके अन्तःकरणोंमें (यत् रेतः) जो पूर्व कृतकर्म जन्य वासना समूहरूप बीज था (तत्) उसके उद्बुद्ध होनेसे ही (कामः) धर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें जगत् सृजन-कामना (समवर्तत) उत्पन्न हुई। (सतः) विद्यमान जगत्के (बन्धुम्) हेतुभूत वासना-समूहको (असति) अव्याकृतमें (कवयः) क्रान्तदर्शी महर्षियोंने अपनी (हृदि मनीषा×) ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा (प्रतीष्य+) ईक्षणकर (निरविन्दन्) पता लगाया है।

४८—तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-
मधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्
त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्।
(ऋ० १०।१२९।५)

× मनीषा=मनीषया "सुपां सुलुक्" इति तृतीयायाः लुक्।
+ प्रतीष्या=विचार्य "अन्येषामपि" इति सांहितिको दीर्घः।

अर्थ—(एषाम्) पूर्वोक्त अविद्या, काम, कर्मोंका (रश्मि.) सूर्य-किरणों जैसा सर्वत उत्पन्न कार्य-वर्ग पहले-पहल (तिरश्चीनो विततः) तिरछा अर्थात् मध्यमें पैदा हुआ? (स्वित्) अथवा (अधः आसीत्) नीचे बना था? (स्वित्) या कि (उपरि) ऊपर (आसीत्) उत्पन्न हुआ था—यह कुछ नहीं जाना जाता; क्योंकि एक क्षणमें ही सम्पूर्ण विश्व बन गया था। उसमें दो वर्ग स्पष्ट थे—एकमें (रेतोधा) बीजभूत कर्मोंके धारक=कर्ता और भोक्ता जीव (आसन्) थे और दूसरे वर्गमें (महिमान) महान् आकाशादि भोग्य पदार्थ (आसन्) थे। उन दोनों वर्गोंमें (स्वधा) अन्नादिरूप भोग्यजगत (अवस्तात्) निकृष्ट और (प्रयति.) प्रयत्नशील भोक्तृ-वर्ग (परस्तात्) उत्कृष्ट था।

४९—को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
ऽथा को वेद यत आबभूव॥
(ऋ० १०।१२९।६)

अर्थ—(को अद्धा वेद) कौन ठीक-ठीक जानता है? (क इह प्रवोचत्) कौन इस विषयमें कह सकता है? कि (इयं विसृष्टि) यह भूत, भौतिकादि विविध रचना (कुत) किस उपादानसे और (कुत) किस निमित्त कारणसे (आजाता) प्रादुर्भूत हो गई। केवल मानव-शक्तिसे ही परे यह विषय नहीं, देव गण भी नहीं जान सकते। क्योंकि (अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) इस सृष्टिके अनन्तर (देवा) देव-गण

बने हैं। फिर मनुष्योंमें भला उसे (को वेद) कौन जान सकता है? (यतः आबभूव) जिससे संसार बना।

५० — इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥

(ऋ० १०।१२९।७)

अर्थ — (इयं विसृष्टिः) यह विपुल सृष्टि (यतः आबभूव) जिस अभिन्न निमित्तोपादान कारणसे बनी है। (यदि दधे) यदि धारण कर रखा है तो उसने (यदि वा न) यदि नहीं धारण किया है तो उसने। अर्थात् ईश्वर स्वतंत्र है चाहे वह सृष्टि करे या न करे। (यो अस्य अध्यक्षः) जो इस उच्चावच प्रपञ्चका अध्यक्ष (परमे व्योमन्) आ ...वन निर्मल स्वप्रकाश में स्थित है। (अङ्ग) प्रिय श्रोताओं! (यदि वेद) यदि जानता है (यदि वा न) अथवा नहीं तो (सः) वही परमात्मा! अन्य कोई नहीं जान सकता है।





चतुर्थ सोपान

ब्राह्मण-शिक्षा

१. ब्रह्मचर्य-वरेण्यता

१—तमेवं विद्वांसमेवं चरन्तं
सर्वे वेदा आविशन्ति ।
यथा ह वा अग्निः समिद्धो रोचते ।
एवं ह वै स स्नात्वा रोचते ।

(शत० ११।३।३।७)

अर्थ—(एवं विद्वांसम्) ब्रह्मचर्य रहस्योंका जानकार (एवं चरन्तम्) ब्रह्मचर्य-परायण (तम्) ब्रह्मचारीको (सर्वे वेदा आविशन्ति) सभी वेद अपने तत्त्वावेशसे सुशोभित कर देते हैं। (यथा ह) जिस प्रकार (समिद्ध) प्रज्वलित (अग्निः) अग्नि (रोचते) देदीप्यमान होती है; (एवं ह वै) ठीक उसी प्रकार (सः) वह ब्रह्मचारी (स्नात्वा) स्नातक× बन कर (रोचते) विश्वमें चमकता है।

× गुरुकुल-वास कालिक अस्नानादि नियमोंको "अधीत्य स्नायात्" इत्यादि निर्देशानुसार सविधि समाप्त करनेवाला छात्र स्नातक (graduate) कहलाता है।

२. सत्य

२—द्वयं वै इदं न तृतीयमस्ति
सत्यं चैवानृतं च ।
एतद् ह वै देवा व्रतं चरन्ति
यत्सत्यं तस्मात्ते यशः ।
(शत० १।१।१।४)

अर्थ—(द्वयं वै इदम्) दो हो हैं निम्सन्देह ये वाणीके कर्म—(सत्य च एव अनृतं च) सत्य और झूठ। (न तृतीयमस्ति) तीसरा कर्म नहीं। (एतद् ह वै देवा व्रतं चरन्ति) इसीको ही देवगण अपना मुख्य व्रत मानते और पालते हैं; है (यद् सत्यम्) जो यह सत्य। (तस्मात् ते यशः) बस उसीसे वे यश पाते हैं।

३—अथैतन्मूलं वाचो यदनृतम् ।
तद्यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति
स उद्वर्तते एवमेवानृतं वदनाविर्मूलमात्मानं
करोति स शुष्यति स उद्वर्तते ।
(ऐ० आ० २।३।६)

अर्थ—(अथ एतत् मूल वाचः) यह मूल है वाणीका—(यद् अनृतम्) जो 'झूठ' है। (तद् यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति) जिस प्रकार नंगी जड़ोंवाला वृक्ष सूख जाता है। (स उद् वर्तते) फिर वह उखड़ जाता है। (एवम् एव अनृतं वदन्) ऐसे ही मिथ्या-भाषी पुरुष (आविर्मूलम् आत्मानं करोति) अपने आपको नंगी जड़ोंका कर लेता है; फिर (स शुष्यति) वह सूखता और (स उद् वर्तते) उखड़ कर धराशायी हो जाता है।

४—यद्वाव पुरुषो मनसा अभिगच्छति
तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति ।
(तै० आ० १।२३)

अर्थ—(यद् वाव) जो कुछ भी (पुरुषो मनसा अभिगच्छति) पुरुष मनसे सोचता रहता है, (तत् कर्मणा करोति) वही क्रिया रूपमें परिणत कर देता है।

५—न मनसा अनृतमभिगच्छेन्न वदेन्न कुर्यात् ।
(तै० ब्रा० १ ७।२)

अर्थ—मनुष्यका परम कर्तव्य है कि (न मनसा अनृतम् अभिगच्छेत् न वदेत् न कुर्यात्) न मनसे झूठ सोचे, न वाणीसे बोले और न शरीरसे करे।

३. तप

६—तपसा देवा देवतामग्र आयन् ।
तपसर्षयः स्वरन्वविन्दन् ।
तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीः ।
येनेदं विश्वं परिभूतं यदस्ति ॥
(तै० ब्रा० ३।१२।३)

अर्थ—(येन इदं विश्वं परिभूतम् अस्ति) जिस तपने समस्त देव, ऋषि, मनुष्यात्मक विश्वको सर्वतः व्याप्त कर रक्खा है। उसी तपके प्रभावसे इन्द्रादिने देवत्व तथा नारदप्रमुख ऋषियोंने स्वर्ग प्राप्त किया है। हम भी तपसे ही अपने अ-दानशील शत्रुओंको (प्रणुदाम) परास्त करेंगे। शतपथ भी यही कहता है—"तपसा वै लोकं जयन्ति" (शत० ३।४।४।२७)

४. द—द—द

७—त्रयः प्राजापत्या । प्रजापतौ पितरि
ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुराः ।
उषित्वा ब्रह्मचर्यं . . . ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति
. . . तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच 'द–द–द' इति ।
तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नु-
र्द द द इति । दाम्यत दत्त दयध्वमिति ।
(बृह० १४८२२ ४)

अर्थ—प्रजापतिके 'देव, मनुष्य और असुर'—तीन पुत्र अपने पिता प्रजापतिकी शरणमें कर्तव्य जिज्ञासासे पहुँचे । वर्षोंतक व्रत-पालन पूर्वक पिताकी सेवा करने लगे । पिताको प्रसन्न करके बोले—"प्रभो ! हमें कर्तव्य-उपदेश करें" । क्रमशः प्रत्येकको प्रजापतिने उपदेश दिया —'द' । 'द–द–द'—ये तीन अक्षर प्रजापतिके महान् उपदेश हैं । व्योमके विपुल प्रशस्त उदरमें इन्हींका नाद भरा हुआ है । मेघ ध्वनि समय-समय पर जिसकी व्यञ्जना किया करती है ।

प्रथम 'द' के अर्थ (दाम्यत) में देवोंके लिए आत्म-शासनका कड़ा अनुशासन है । प्रत्येक उन्नत जीवनके पतनका एक मात्र कारण है—'विलासिता' । इससे बचानेके लिए प्रतिक्षण दैवी वाककी प्रेरणा जागरूक है—दाम्यत=दमन करो विलासी इन्द्रियोंका ।

सामाजिक विषमता-जन्य कलहको दूर करनेके लिए मनुष्योंको सुन्दर निर्देश दिया गया—'द'=(दत्त) दान

करो। सञ्चय करनेकी पापिष्ठ प्रकृति त्याग वितरणका पाठ पढ़ो। असुरोंको अनादिनिधना दैवी वाग् मधुर उपदेश करती है—"द=(दयध्वम्) असुरो! अकारण वैर, रक्त पिपासा तथा हिंसक प्रवृत्तियोंको रोको। तुम्हारे विकराल विविध आयुधोंकी झनकारों और गर्जनाओंसे रणचण्डी शान्त न होगी; प्रत्युत और मदमाती होकर नग्न नृत्य करेगी। इसे मनानेका बस यही मन्त्र है—द=(दयध्वम्) दया करो सब जीवों पर।

५ श्रेष्ठतम कर्त्तव्य

८—यज्ञो ह वै श्रेष्ठतमं कर्म।
तस्मान्मनुष्येभ्यो यज्ञं प्राह ॥(गो० उ० २।१३)

अर्थ—×यज्ञकर्म निःसन्देह श्रेष्ठ है सब कर्मोंसे। अत एव मनुष्योंके लिए यज्ञका महान् उपदेश किया गया है।

६. यज्ञ-भेद

९—सायंप्रातर्होमौ स्थालीपाको नवश्च यः।
बलिश्च पितृयज्ञश्चाष्टका सप्तम पशुः ॥
इति पाकसंस्था ॥

अग्न्याधेयमग्निहोत्रं पौर्णमास्यमावास्ये।
नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽत्र सप्तमः ॥
इति हविःसंस्था ॥

× यज्ञ = किसी देवताके उद्देश्यसे पुरोडाशादि द्रव्यके त्यागका नाम याग है—"द्रव्यं देवता त्यागः" (का० श्रौ० सू० १।२।२)

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः ।
वाजपेयोऽतिरात्रश्चाप्तोर्यामात्र सप्तमः ॥
इति सोमसंस्थाः ॥ (गोपथ० पू० ५।२३)

अर्थ — सम्पूर्ण यज्ञ प्रपञ्च इक्कीस भागोंमें विभक्त है — ७ 'पाकयज्ञ-* संस्थाएँ '+ ७ 'हविर्यज्ञ-संस्थाएँ '+ ७ 'सोम-संस्थाएँ ' ।

+पाकयज्ञ-संस्थाएँ — (१) सायंप्रातः - होम, (२) स्थालीपाक, (३) नव यज्ञ, (४) बलि वैश्वदेव, (५) पितृयज्ञ, (६) अष्टका, (७) (पशु) शूलगव ।

* " संस्था = विधा. पाकयज्ञविधाः सप्तेत्यर्थः " (मिताक्षरा गौ० ध० सू० ९।८।१९)

+ पाकयज्ञोंका अनुष्ठान स्मार्त ('गृह्य' या 'आवसथ्य' या 'औपासन') अग्निमें होता है । अत इन्हें स्मार्त कर्म कहते हैं । सपत्नीक पुरुषके लिए यावज्जीवन अनुष्ठेय हैं । इनकी प्रशंसा तैत्तिरीय संहिता (१।७।१) में भी है ।

सायंप्रातः - होम — 'औपासनहोम' भी इसे कहते हैं । दधि आदिसे किया जाता है — "दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा" (पा० गृ० १।८।३) सायं प्रधान देवता अग्नि और प्रातः सूर्य; प्रजापति दोनों समय अङ्गदेवता है ।

स्थालीपाक — "पर्वणि भवः स्थालीपाकः पार्वणः" (मिता० गौ० ध० सू० ९।८।१९) अर्थात् प्रत्येक अमावास्यामें पट्ट पुरुषोंके उद्देश्यसे किया जाता है । यह भी नित्य कर्म है । पाकयज्ञोंका विशद विवेचन सूत्रग्रन्थोंमें है । "कौषीतकिगृह्य" का उपक्रम ही यहाँसे होता है । — "अथातः पाकयज्ञ व्याख्यास्यामः" । "गौतम धर्म सूत्र" (९।८।१९,२०,२१) में २१ संस्थाओंकी चर्चा है और उन्नीसवें सूत्रकी मिताक्षरामें पाकयज्ञ-विषयक मत-मतान्तर दिखाये हैं । "सांख्यायन-गृह्यसंग्रह" में पाकयज्ञोंकी साङ्गोपाङ्ग पद्धति निरूपित है ।

'हविर्यज्ञ संस्थाएं—(1) अग्न्याधेय,[2] (2) अग्निहोत्र,[3] (3) दर्श,[4] (4) पौर्णमास, (5) आग्रयण,[5] (6) चातुर्मास्य,[6]

---

1. हविर्यज्ञ और सोम—दोनों प्रकारके यज्ञ श्रौत कर्म कहे जाते हैं।

2. "अग्नीन् आधाय पूर्णाहुत्या यजेत्" (गोप० पू० 5।8) अर्थात् पूर्णाहुति पर्यन्त अग्न्याधान करे।

3. "सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहोति" (तै० स० 3।4।10) अर्थात् सायं प्रातः अग्नि होत्र संज्ञक कर्म करना चाहिए। इसमें भी देवता वही हैं, जो स्मार्त औपासन होममें हैं। परन्तु 'अग्निहोत्र' संज्ञा इस श्रौत कर्मकी ही है, स्मार्त की नहीं।

4. दर्श (अमावास्या) में होनेवाले 'आग्नेय' और 'ऐन्द्र'—द्वय—ये तीन कर्म 'दर्श' के नामसे प्रसिद्ध हैं और पूर्णमासीमें अनुष्ठेय 'आग्नेय', 'अग्निषोमीय', 'उपांशुयाज'—ये तीन कर्म 'पौर्णमास' संज्ञक हैं। सभी उक्त छः कर्म मिलकर 'दर्शपौर्णमास' कहलाते हैं। यद्यपि गोपथ ब्राह्मण दर्श और पौर्णमासको पृथक्शः गिनता प्रतीत होता है, परन्तु दोनोंकी एक कर्मता निर्णीत है। इस पक्षमें सप्तम हविस्संस्था सौत्रामणी है।

5. आग्रयण (अग्रे नवान्नोत्पत्यनन्तरमयनमाचरणं यस्य तदाग्रयणम्) नवसस्येष्टिका नामान्तर है।

6. चातुर्मास्य—चार-चार मासोंके अनन्तर किए जानेके कारण 'चातुर्मास्य' नाम पड़ा। इसके चार पर्व हैं—'वैश्वदेव', 'वरुणप्रघास', 'साकमेध', शुनासीरीय। इनका अनुष्ठान महर्षि आपस्तम्बके शब्दोंमें स्पष्ट है—"फाल्गुन्या पौर्णमास्या चैत्र्यां वा वैश्वदेवेन यजते" (आप० श्रौ० सू० 8।1।2)। "ततश्चतुर्षु मासेष्वाषाढ्यां श्रवणाया वोदवसाय वरुणप्रघासैर्यजेत" (आप० श्रौ० सू० 8।5।1)। "ततश्चतुर्षु मासेषु पूर्वस्मिन् पर्वण्युपक्रम्य द्व्यहं साकमेधैर्यजेत" (आप० श्रौ० सू० 8।9।1)। "ततो द्व्यहे त्र्यहे चतुरहेऽधमासे मासि चतुर्षु वा मासेषु शुनासीरीयेण

(७) पशुबन्ध[१]।

सोमयाग[२]-संस्थाएँ — (१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ्य, — (४) षोडशी, (५) वाजपेय, (६) अतिरात्र, (७) आप्तोर्याम.

यजते" (आप० श्रौ० सू० ८।२०।१) अर्थात् फाल्गुन-पूर्णिमामें यदि प्रथम पर्व करे तो आषाढ-पूर्णिमामें द्वितीय पर्व, कार्तिक-पूर्णिमामें तृतीय। यदि चैत्र-पूर्णिमामें वैश्वदेव किया जाय तब तदनुसार चार-चार मासके अनन्तर क्रमशः शेष — अनुष्ठान होगा। चातुर्मास्यका अनुष्ठान सकृद् भी होता है यावज्जीव भी। यावज्जीव पक्षमें चतुर्थ पर्वका अनुष्ठान फाल्गुन चतुर्दशीमें और पूर्णिमामें फिर वही क्रम जारी रहेगा। सकृत् पक्षमें फाल्गुन-प्रतिपद्में चतुर्थ पर्व होगा।

१. पशुबन्ध — इसे निरूढ पशुबन्ध भी कहते हैं उत्तरायणके आरम्भमें छागसे किया जाता है।

२ सोमयाग — 'सोम' एक लता है; जिसके रससे निष्पाद्य याग, 'सोमयाग' कहा जाता है। इसके तीन भेद होते हैं — (१) एकाह, (२) अहीन, (३) सत्र। जिस यागमें सोम-रसका अभिषव एक ही दिन होता है, उसे "एकाह" कहते हैं। जिसमें दोसे बारह दिनों तक अभिषव होता है; उसे 'अहीन' और जिस सोमयागका अनुष्ठान पक्षसे लेकर सहस्र संवत्सर तक चालू रहता है, उसे 'सत्र' कहते हैं। यद्यपि सोमयागकी अग्निष्टोम संस्था एक दिनमें निष्पाद्य है; तथापि अपने अङ्गोंके सहित पाँच दिनोंमें निष्पन्न होती है। 'संस्था' शब्दका अर्थ यहाँ समाप्ति है। जिस सामसे कर्मकी समाप्ति होती है; उस सामके नामपर वह कर्म प्रसिद्ध होता है। जैसे — अग्निष्टोम संज्ञक साम जिसकी समाप्तिमें होता है, उसे अग्निष्टोमसंस्थाक सोमयाग कहते हैं। जिसकी समाप्ति अग्निष्टोम सामसे बढ़कर उक्थ्य सामपर होती है;

७. यज्ञ-क्रम

१०—अथानो यज्ञक्रमः— अग्न्याधेयमग्न्याधेयात् पूर्णाहुतिः पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद् दर्शपूर्णमासौ दर्शपूर्णमासाभ्यां चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यो अग्निष्टोमोऽग्निष्टोमाद् राजसूयो राजसूयादश्वमेध ।

(गा० पू० ५।७)

अर्थ— अब यज्ञक्रम कहा जाता है— सर्वप्रथम 'अग्न्याधान,' ततः 'पूर्णाहुति,' फिर 'अग्निहोत्र,' अग्निहोत्रके पश्चात् 'दर्शपूर्णमास,' तदनन्तर 'चातुर्मास्य,' तत्पश्चात् 'अग्निष्टोम' अग्निष्टोमके बाद 'राजसूय' और राजसूयके अनन्तर 'अश्वमेध'।

८. पाँच महायज्ञ

११.—पञ्चैव महायज्ञा । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ॥

(शत० ११।५।६।१)

अर्थ— पाँच ही महायज्ञ हैं। वे ही महासत्र कहलाते हैं। वे पाँच हैं— भूत-यज्ञ, (२) मनुष्य-यज्ञ, (३) पितृ यज्ञ, (४) देव-यज्ञ, (५) ब्रह्म यज्ञ। गृहस्थियोंके लिए इनका नियमपूर्वक विधान किया गया है+

उसे उक्थ्यसंस्थाक कहा जाता है— इसी प्रकार षोडशी और अतिरात्र संस्थाएँ बनती हैं। इन चार संस्थाओंके उलट फेरसे शेष तीन — अत्यग्निष्टोम, वाजपेय और आप्तोर्याम संस्थाओंका स्वरूप सम्पन्न होता है।

+ अग्निमानग्निमान् कुर्यादिमाँस्तु प्रत्यह मकृत् ।
अन्यथा प्रत्यवायी स्याद्रौरव नरक व्रजेत् ॥ (यज्ञपार्श्वे)

१२—अहरहर्भूतेभ्यो बलिं हरेत्; तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति। अहरहर्दद्यादोदपात्रात्; तथैतं मनुष्ययज्ञं समाप्नोति। अहरहः स्वधा कुर्यादोदपात्रात्; तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति। अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात्; तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति।
(शत० ११।५।६।२)

अर्थ—(१) प्रतिदिन गो आदि प्राणियोंको भोजन दे—यही भूत-यज्ञका सम्पादन है। (२) हर रोज (या उदपात्रात) जल-पात्र भर अन्न किसी भूखे मनुष्यको दे—यही मनुष्य-यज्ञका अनुष्ठान है। (३) नित्य प्रति स्वधा-कार-पूर्वक पितरोंको अन्न-जल दे—यही पितृ-यज्ञकी सम्पत्ति है। (४) नित्यशः स्वाहा-कारपूर्वक देवोंको* काष्ठपर्यन्त हवि अर्पित करे—यही देव-यज्ञ है।

१३—स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः (शत० ११।५।६।३)

अर्थ—(५) अपनी वंश-परम्परा-प्राप्त शाखाका विधिपूर्वक आचार्यसे अध्ययन करना ही ब्रह्म-यज्ञ कहा जाता है।

९. स्वाध्याय-महिमा

१४—यदि ह वा अप्यभ्यक्तोऽलंकृत सुहितः सुखे शयाने शयानः स्वाध्यायमधीते। आहैव स नखाग्रेभ्यस्तप्यते। य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते। तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः॥
(शत० ११।५।७।४)

---

* "अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाष्ठाद्देवेभ्यः"
(पार० गृ० सू० २।९।१९)

अर्थ—अध्ययनशील यदि तेल मर्दन करके, वस्त्र आभूषणोंसे सज धज कर, (सुहित) यथेष्ट भोजनसे तृप्त होकर, कोमल पुष्प शय्या पर लेटे-लेटे वेदाध्ययन करता है। तो भी वह निःसन्देह नख शिख तप करता है; जो स्वाध्याय करता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

१०. उद्योग

१५—नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापी नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत सखा॥
चरैवेति चरैवेति।

अर्थ—(रोहित) हे रोहित* (शुश्रुम) सुनते हैं कि (नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति) पुरुषार्थ करते करते जो नितान्त श्रान्त नहीं हो गया, उसे श्री के दर्शन नहीं होते। अथवा (नना श्रान्ताय श्रीरस्ति) गाढ परिश्रमसे थके हुए पुरुषको नाना प्रकारको सम्पद् मिलता है। (नृषद् वरो जन पापी) नित्य मनुष्योंके घर पर ही पड़ा रहनेवाला निखट्टू पुरुष, पापिष्ठ हो जाता है। (इन्द्र चरत इत् सखा) परमात्मा पराक्रमी पुरुषका ही मित्र है, (चरैवति चरैवति) अतः चलते रहो, चलते रहो।

* एतरेय ब्रा० ३३। ? में उपाख्यान आता है—वरुणदेवकी कृपासे हरिश्चन्द्रके पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया 'रोहित' वरुणने उसकी भेंट माँगा। हरिश्चन्द्र टाल-मटोल करने लगे। 'रोहित'को वनमें भेज दिया। वनमें इन्द्रने रोहितको सुन्दर उद्योगका यह उपदेश दिया है।

१६—पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः ॥
चरैवेति० ।

अर्थ—(चरतः) जो पुरुष चलता रहता है, उसकी (जङ्घे पुष्पिण्यौ) जाँघोंमें फूल फूलते हैं, (भूष्णुः आत्मा फलग्रहिः) और वर्धिष्णु शरीरमें फल लग जाते हैं। (अस्य) इस श्रमजीवीके (प्रपथे हताः सर्वे पाप्मानः) प्रपथकी बाधाएँ विनिष्ट हो (शेरे) सदाके लिए सो जाती हैं। इस लिए चलते रहो, चलते रहो।

१७—आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भग ॥
चरैवेति० ।

अर्थ—(आसीनस्य भग आस्ते) बैठे हुएका सौभाग्य बैठा रहता है, (तिष्ठत उर्ध्वस्तिष्ठति) खड़ेका खड़ा और (निपद्यमानस्य शेते) सोनेवालेका भाग्य भी सोता रहता है। हां! (चरति चरतो भग) चलनेवालेका सौभाग्य चलता ही रहता है। अत: चलते रहो, चलते रहो।

१८—कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
चरैवेति० ।

अर्थ—(शयानो भवति कलिः) सोया हुआ पुरुष है कलियुग, (संजिहानस्तु द्वापरः) अंगड़ाई लेनेवाला द्वापर, (उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति) उठकर खड़ा हुआ मानव, त्रेता और

(चरन् सम्पद्यते कृतम्) उद्योगी, सत्य युगका अवतार है। अतः चलते रहो, चलते रहो।

१९—चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥
चरैवेति०।

अर्थ—(चरन् वै मधु विन्दति) चलता हुआ ही मनुष्य मधु पाता है, (चरन् स्वादुम् उदुम्बरम्) चलता हुआ ही अलभ्य गूलरका फूल पाता और मधुर फल खाता है। (सूर्यस्य श्रेमाणं पश्य) हे रोहित! उस सूर्यका परिश्रम देख (यो न तन्द्रयते चरन्) निरन्तर चलने पर भी जिसमें तन्द्राका नाम तक नहीं। अतः चलते रहो, चलते रहो।

११. श्वासप्रश्वास-गणना

२०—शतं शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति। अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्व प्राणिति चाप चानिति॥
(शत० १२।३।२।८)

अर्थ—पुरुष सामान्य रूपसे (शतं शतानि) १००×१००= दस हज़ार (अष्टौ शता) आठसो श्वास प्रश्वास लेता है। (यत् मितं तद् वदन्ति) ठीक ठीक जो गणना की गई है, वही कहते हैं—कि दिन रातमें प्राणी स्वाभाविक उतनी ही (१०८००) बार श्वास लेता और उतनी ही बार प्रश्वास फेंकता है।

१२. शम

२१—शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति, शमेन नाकं मुनयोऽन्वविन्दञ्छमो भूतानां दुराधर्षं शमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माच्छमः परं वदन्ति ॥
(तै० आ० १०।६३)

अर्थ—(शमेन) मनोनिग्रह-पूर्वक शान्त पुरुष शुभ आचरण करते हैं। शमसे ही नितान्त सुखस्वरूप ब्रह्मको मुनियोंने प्राप्त किया है। मनुष्योंका दुर्धर्ष कर्तव्य है—शम। शममें सर्वस्व निहित है; अतः शमको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं।

१३. दम

२२—दमेन दान्ताः किल्बिषमवधून्वन्ति
दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्
दमो भूतानां दुराधर्षं दमे सर्वं प्रतिष्ठितं
तस्माद्दमः परं वदन्ति ॥ (तै० आ० १०।६३)

अर्थ—दान्त मनुष्य (दमेन) इन्द्रिय-निग्रहसे अपने पाप-पुञ्जको नष्ट कर डालते हैं। दमसे ब्रह्मचारी स्वर्ग-सुख पाते हैं। दम मानवोंका दुस्सह कर्म है। दममें सबकुछ है; इसलिए दमको अत्युत्तम कहते हैं।

१४. विजय-पथ

२३—चरणं पवित्रं विततं पुराणं, येन पूतस्तरति दुष्कृतानि। तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता, अतिपाप्मानमरातिं तरेम॥ (तै० ब्रा० ३.१२.३)

अर्थ—आर्यजनोंका पवित्र, परमोदार, चिरन्तन शास्त्रीय आचरण, संसारके लिए एक महान आदर्श है। जिसके द्वारा पवित्र हुआ मानव प्रचण्ड पापमय अग्नि परीक्षाओंमें अनायास उत्तीर्ण हो जाता है; उसी पावन स्वच्छ आचार-पथपर चलकर ही हम पापात्मा घोर शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। भगवान मनु तो शुद्ध आचारको कल्पवृक्षसे कम नहीं मानते—आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
(मनु० ४।१५६)

इतना ही नहीं "आचारश्चैव साधूनां" (२।६), "आचारः परमो धर्मः" (१।१०८) कहकर मनुने आचारको प्रामाणिकता और अनिवार्य कर्तव्यताका बंध कड़ा शासन जारी किया है। आचारहीन वैदिक धुरन्धर विद्वानको भी पतित बताया है—"आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते" (१।१०९)। महर्षि वसिष्ठ भी कहते हैं—"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः"।

१५. पराभव-पथ

२४—ते उभे प्राजापत्याः पस्पृधिरे। ततः असुरा अतिमानेनैव कस्मिन्नु वयं जुहुयामेति स्वेष्वास्येषु जुह्वतः चेरुः। ते अतिमानेनैव पराबभूवुः। तस्मान्नातिमन्येत। पराभवस्य ह्येतन्मुखं यदतिमानः॥ (शत० ५।१।१।१)

अर्थ—वे दोनों (देव और असुर) प्रजापतिके पुत्र परस्पर स्पर्धा करने लगे। उनमें असुरोंने, 'हम किस दूसरे मुखमें हवन करें'—ऐसे अभिमानसे अपने ही मुखमें

हवन करते हुए स्वार्थ परायणताका घृणित आचरण किया। वे उस अति मानके कारण ही परास्त हुए। अतः मानसे सर्वथा दूर रहना चाहिए। क्योंकि पराभवका एक प्रधान पथ है—यही अतिमान।

१६. स्त्री-प्रतिष्ठा

२५—गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा। तद् गृहेष्वेवैनामेतत्प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठापयति॥ (शत० ३।३।१।१०)

अर्थ—घरोंकी शोभा-प्रतिष्ठा पत्नीसे ही है। अतः घरोंमें पत्नीकी पूर्ण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

२६—स्त्री वा एषा यच्छ्रीः। न वै स्त्रियं घ्नन्ति।
(शत० ११।४।३।२)

अर्थ—निःसन्देह स्त्री ही गृहलक्ष्मी है। इसलिए स्त्रीके कोमल हृदय पर किसी प्रकारका आघात नहीं आने देना चाहिए।

१७. अर्थ-ज्ञानकी वाञ्छनीयता

२७—स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥
(शाखा० आ० १४।२)

अर्थ—गधा है यह केवल भार ढोनेवाला; जो अध्ययन करके भी वेदका अर्थ नहीं जानता। जो अर्थाभिज्ञ है, निःसन्देह यह सकल कल्याणका भाजन होता है। यह

ब्रह्म-ज्ञानके प्रभावसे समस्त पापोंको भस्मसात् करके शुद्ध हो, निरतिशय सुख (मोक्ष)को पा लेता है।

१८. वेदान्तकी उपादेयता

२८—ऋचां मूर्धानं यजुषामुत्तमाङ्गं साम्नां शिरोऽथर्वणां मुण्डमुण्डं नाधीतेऽधीते वेदमाहुस्तमज्ञं शिर-श्छित्त्वाकुरुते कबन्धम्। (शांखा० आ० १४।१)

अर्थ—ऋक्-शाखाओंके मस्तक, यजुः—शाखाओंके उत्तमाङ्ग, साम-शाखाओंके शिरोभूत, अथर्व शाखाओंके शिखररूप वेदान्तका जो अध्ययन नहीं करता, शेष वेदका अध्ययन भले ही करता हो; उसे अनभिज्ञ ही कहा करते हैं। क्योंकि उसने भगवान् वेदका शिर काटकर धड़ पृथक् कर डाला है।

१९. वन-वृक्ष—वाद

२९—किं स्विद् वन क उ स वृक्ष आसीद्, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्, यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥ (तै० ब्रा० २।८।९।)

अर्थ—कौन सा वह वन है? कौन सा वह वृक्ष है? जिससे द्युलोक और पृथ्वीलोकको कारीगरोंने बनाया। हे मनीषियो! अपने मनसे विचारकर आचार्यसे पूछो—कौन है वह?—जो सब भुवनोंका धारणकर्ता और अधिष्ठाता है।

३०—ब्रह्म वन ब्रह्म स वृक्ष आसीद्, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो, ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥
(तै० ब्रा० २।८।९)

अर्थ—ब्रह्म वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है जिससे स्वर्ग और पृथिवी दोनोंको बनाया गया है। हे मनीषियो! मनसे निश्चय करके ही मैं (आचार्य) तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ कि ब्रह्म ही भुवनोंका धारणकर्त्ता और अधिष्ठाता है।

२०. ब्रह्म-भाव

३१—ब्रह्ममेतु माम्। मधुमेतु माम्।
ब्रह्ममेव मधुमेतु माम्।
यास्ते सोम प्रजा वत्सोऽभि सो अहम्।
दुष्ष्वप्नहन्दुरुष्षह। यास्ते सोम
प्राणाँस्ताञ्जुहोमि॥ (तै० आ० १०।४८)

अर्थ—(ब्रह्म) परब्रह्म तत्त्व मुझे प्राप्त हो। परमानन्दरूप मधु मुझे मिले। ब्रह्म ही तो मधु है—वही अखण्डैकरस वस्तु मुझको सम्प्राप्त हो। (सोम*) हे परमात्मन् (ते या प्रजा) तेरी जो प्रजा है (ता अभि सो अहम् वत्स) उस प्रजामें मैं एक अबोध बालक हूँ। (दुष्प्रहन्) हे

* सोम—"उमा ब्रह्मविद्या तया सह वर्तमान" परमात्मन्!"
(सायण-भा० तै० आ० १०।४८)

संसाररूप दुःस्वप्नके नाशक! (दुष्वप्द) दुःस्वप्न समूल उच्छेद कर। हे उमेश! तेरे प्राणोंमें मैं अपने प्राण होम करता हूँ।

२१. उपसंहार

३२—नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो
मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतय ।
परादुर्मा॑ऽहमृषीन्मन्त्रकृतो
मन्त्रपतीन्परादाम् ॥ (तै० आ० ४।१)

मन्त्र-कर्त्ता, मन्त्रभर्त्ता य च वे ऋषिराज हैं।
सत्य शब्दोंमें हमारे विश्वके सिरताज हैं।
वे न टालें दूर मेरे स्वान्तसे निज पादको
हे प्रभो! मैं भी न छोड़ूँ दिव्य, देशिक पादको॥



तृतीयचतुर्थसोपानस्थमन्त्रानुक्रमणिका

संकेत-शब्द-सूची

अथ० –अथर्ववेद
आप० श्रौ० सू० –आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र
ऋ० –ऋग्वेद
ऋक् प्राति० –ऋक् प्रातिशाख्य
ऐ० ब्रा० –ऐतरेय ब्राह्मण
कण्व सं० –कण्व संहिता
का० श्रौ० सू० –कात्यायन-श्रौतसूत्र
गी० –भगवद्गीता
गो० पू०, गोप० पू० –गोपथ ब्राह्मण-पूर्वार्द्ध
चरणव्यू० –चरण व्यूह
छां०, छां० उ० –छान्दोग्य उपनिषत्
जै० सू० –जैमिनि-सूत्र
तापनीय उ० –तापनीय उपनिषत्
तै० आ० –तैत्तिरीय आरण्यक
दैवत ब्रा० –दैवत ब्राह्मण
नारदीय० –नारदीय शिक्षा
नि०, निरु० निरुक्त
पा० शि० –पाणिनीय शिक्षा
पार० गृ० सू० –पारस्कर-गृह्य सूत्र
प्रश्नो० –प्रश्नोपनिषत्
बृह० उ० –बृहदारण्यक उपनिषत्
भा० –श्रीमद् भागवत
मनु० –मनु-स्मृति
मन्त्र ब्रा० –मन्त्र ब्राह्मण
महा० भा०, व्या० महा भा० –व्याकरण-महाभाष्य
मिता० गौ० ध० सू० –मिताक्षरा गौतमधर्म सूत्र
मुण्ड० उ० –मुण्डक उपनिषत्
यजु० –यजुर्वेद
यो वा० –योगवासिष्ठ
वंश ब्रा० –वंश ब्राह्मण
शत० –शतपथ ब्राह्मण
शब्दस्तो० –शब्दस्तोम महानिधि
शाङ्खा० आ० –शाङ्खायन आरण्यक
शु० यजु० प्राति० –शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य
श्लो० वा० –श्लोक वार्तिक (कुमारिल भट्ट)
सत्या० श्रौ० सू० –सत्याषाढ श्रौत सूत्र
सर्वनिर्णय प्र० –सर्वनिर्णय प्रकरण (वल्लभाचार्य)
सर्वानु० –सर्वानुक्रमणी
सां० त० कौ० –सांख्य तत्त्व कौमुदी
स्कन्द० पु० नाग० –स्कन्द पुराण नागर खण्ड
स्तोमानु० –स्तोमानुक्रमणी